प्राकृत वाङ्मय में दिगम्बर जैन कथाओं का गद्य शैली में रचित प्रथम ग्रन्थ

धम्मकहा

रचयिता
मुनि श्री प्रणम्यसागरजी

प्राकृत वाङ्मय में दिगम्बर जैन कथाओं का गद्य शैली में रचित प्रथम ग्रन्थ

धम्मकहा

रचयिता

मुनि प्रणम्यसागर

प्रकाशक

आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति

उज्जैन (म.प्र.)

- **ग्रन्थ** : धम्मकहा
- **आशीर्वाद** : आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज
- **रचयिता** : मुनि श्री १०८ प्रणम्यसागरजी महाराज
- **संयोजन** : बा. ब्र. संजयभैयाजी मुरैना
- **संस्करण** : प्रथम, चातुर्मास 2016, बिजौलिया
- **आवृत्ति** : 1100
- **सहयोग राशि** : 100/-
- **प्राप्ति स्थान** : आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति
  109, शिवाजी पार्क देवास रोड, उज्जैन,
  फोन–2519071, 2518396
  email-sss.crop@yahoo.com

  आर्हत विद्याप्रकाशन
  गोटेगाँव, नरसिंहपुर (म.प्र.)
  मोबा. : 09425837476
- **मुद्रक** : विकास ऑफसेट, भोपाल (म.प्र.)

अन्तर्भाव

महापुरुषों का जीवन सदा प्रेरणादायी होता है। यदि हमारे सामने ऐतिहासिक पुरुषों का कोई कथानक उपलब्ध न हो तो न तो हम कुछ आदर्श बन सकते हैं और न अपनी पीढ़ी को आदर्श बना सकते हैं। अन्य अनेक सम्प्रदायों में इस प्रकार की मानवीय जीवन मूल्यों की वृद्धि करने वाली और व्यक्ति को धर्ममार्ग पर लगाने वाली वास्तविक कथाओं का प्रायः अभाव है। इसलिए उन लोगों को कपोल कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं। उनकी अपनी स्वतः कल्पनाओं के कारण मनीषियों का ऐसा विश्वास हो गया कि कहानी-कथा-किस्सों का वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं होता है। इसलिए तार्किक, आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक लोगों का प्रायः कथा-कहानी पर विश्वास नहीं रहता है। किन्तु जैनदर्शन में यह बात नहीं है। आचार्य समन्तभद्र जैसे तार्किक आचार्यों ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार ग्रन्थ में धर्म की आस्था और चारित्रमार्ग को अपनाने के लिए जिन नामों का उल्लेख किया है वे सभी प्रसिद्ध प्ररुष/स्त्रियाँ हुई हैं। आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् आध्यात्मिक आचार्य को भी अनेक दृष्टान्तों का सहारा लेना पड़ा है तभी उन्होंने भावपाहुड़ आदि ग्रन्थों में शिवकुमार मुनि, भव्यसेन, बाहुबली, द्वीपायन आदि का नाम लेकर प्रसिद्ध पुरुषों की घटनाओं पर अपना विश्वास अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार महान् सैद्धान्तिक आचार्य वीरसेन, जिनसेन आदि आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जहाँ अनेक दृष्टान्तों को लिखा है वहीं आदिपुराण, उत्तरपुराण जैसी रचनायें करके यह सिद्ध कर दिया है कि बिना कथा-कहानी के धर्म का महत्व खड़ा करना बिना नींव के प्रासाद की कल्पना करना जैसा है। आचार्यों ने पुराणग्रन्थों में प्रत्येक कथानक के साथ यथासमय जैन सिद्धान्तों का निरूपण इतनी कुशलता के साथ किया है कि किसी अजैन विद्वान ने कहा है कि-''कथायें लिखना तो कोई जैन विद्वानों से सीखे।''

इन कथाओं का सर्वाधिक वर्णन पुराण ग्रन्थों में मिलता है। इन ग्रन्थों को प्रथमानुयोग का ग्रन्थ कहा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि अव्युत्पन्न अर्थात् बुद्धिहीनजनों के लिए यह प्रथनानुयोग है, ऐसा मानना वस्तुतः उनका यथार्थज्ञान में न्यूनयता के कारण है। महान् जैनाचार्य समन्तभद्रदेव ने प्रथमानुयोग को 'बोधिसमाधिनिधानं' अर्थात् बोधि-समाधि का खजाना कहा है। आचार्य जिनसेन महापुराण में कहते हैं कि 'पुरुषार्थोपयोगित्वात् त्रिवर्गकथनं कथा' अर्थात् मोक्ष पुरुषार्थ के लिए उपयोगी होने से धर्म, अर्थ और काम का कथन करना कथा कहलाती है। ये कथाएँ आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेजनी कथा के भेद से चार भागों में विभक्त हैं। इनमें से विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करने वाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेजनी कथा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्हीं दो प्रकार की कथाओं का वर्णन है। आचार्य गुणभद्रदेव उत्तरपुराण में लिखते हैं कि-

सा कथां यां समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णयः।
कर्णकट्वीभिरन्याभिः किं कथाभिर्हितार्थिनाम्॥ उ.पु. ७४/११

अर्थात् ''कथा वही कहलाती है कि जिसके सुनने से हेय, उपादेय का निर्णय हो जाता है। हित चाहने वाले पुरुषों को कानों से कड़वी लगने वाली अन्य कथाओं से क्या प्रयोजन है?'' इसी प्रकार–

संवेगजननं पुण्यं पुराणं जिनचक्रिणाम्।
बलानां च श्रुतज्ञानमेतद् वन्दे विशुद्धये॥ उ.पु. ७०/२

अर्थात् ''जिनेन्द्रभगवान, नारायण और बलभद्र का पुण्यवर्धक पुराण संसार से भय उत्पन्न करने वाला है इसलिए इस श्रुतज्ञान को मन-वचन-काय की शुद्धि के लिए वन्दना करता हूँ।''

आचार्यों के इस अभिप्राय से अत्यन्त आदर भाव प्रथमानुयोग की कथा-कहानियों पर और श्रद्धा से सुनने का भाव भव्यजीव में अवश्य आ जाता है। इसी कारण से जैनदर्शन में जहाँ एक ओर सैद्धान्तिक, आध्यात्मिक ग्रन्थों की बहुलता है वहीं पुराण, चारित्रपरक ग्रन्थों की भी बहुलता है। संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन विशाल परिमाण में किया गया है जिसका उल्लेखन यहाँ करना अप्रयोजनीय है। जिस तरह संस्कृत भाषा में विपुल साहित्य सभी विधाओं और विद्याओं का जैन जगत् में उपलब्ध है उसी प्रकार प्राकृतभाषा में भी उपलब्ध है। प्राकृतभाषा में जैन मनीषियों ने कथासाहित्य को लेकर नाटक आदि तो रचे हैं, स्तुतियाँ लिखी हैं किन्तु दिगम्बर जैन साहित्य में कथानक गद्यशैली में उपलब्ध नहीं होते हैं। गद्यात्मक कथाओं की प्राकृतभाषा में महती आवश्यकता देखते हुए परमपूज्य आचार्य श्रीविद्यासागरजी महाराज के आशीर्वाद से प्राप्त अल्पज्ञान के क्षयोपशम से यह महनीय कार्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है कि जहाँ यह कार्य कथासाहित्य के रूप में एक ओर मन-वचन-काय को शुद्ध करेगा वहीं दूसरी ओर प्राकृत वाङ्मय की अभिवृद्धि का एक नया चरण सिद्ध होगा। प्राकृतभाषा में लिखने-पढ़ने की सृजनात्मक प्रवृत्ति और बढ़े इसी भावना के साथ.....

—मुनि प्रणम्यसागर
अतिशयक्षेत्र बिजौलियाँ (राजस्थान)
वर्षायोग २०१६

विषय सूची

प्रथम—खण्ड

१.	अंजणचोरकहा	८
२.	अणंतमईकहा	१०
३.	उद्दायणरायकहा	१२
४.	रेवदीराणीकहा	१४
५.	जिणिंदभत्तसेट्ठकहा	१६
६.	वारिसेणमुणिकहा	१८
७.	विण्हुकुमारमुणिकहा	२२
८.	वज्जकुमारमुणिकहा	२६
९.	जमवालचंडालकहा	३०
१०.	धणदेवकहा	३२
११.	णीलीकहा	३४
१२.	जयकुमारकहा	३६
१३.	धणसिरिकहा	३८
१४.	सच्चघोसकहा	४०
१५.	तापसकहा	४४
१६.	जमदंडकोट्टपालकहा	४८
१७.	समस्सुणवणीदकहा	५०
१८.	सिरिसेणरायकहा	५२
१९.	वसहसेणाकहा	५४
२०.	कोण्डेसकहा	५८
२१.	सूयरकहा	५८
२२.	भेगस्सकहा	६०
२३.	सुकोसलमुणिकहा	६२
२४.	चाणक्क मुणिकहा	६४

द्वितीय—खण्ड

१.	दंसणविसोहिभावणा	७०
२.	विणयसंपण्णदा	७२
३.	सीलवदेसु अणइयारभावणा	७६
४.	अभिक्खणाणोवओगभावणा	७८
५.	संवेगभावणा	८०
६.	सत्तीएचागभावणा	८२
७.	सत्तीएतवभावणा	८६
८.	साहुसमाहिभावणा	८८
९.	वेज्जावच्चकरणभावणा	९०
१०.	अरिहंतभत्तिभावणा	९२
११.	आइरियभत्तिभावणा	९४
१२.	बहुसुदभत्तिभावणा	९६
१३.	पवयणभत्तिभावणा	१०२
१४.	आवस्सयापरिहीणभावणा	१०४
१५.	मग्गपहावभावणा	१०६
१६.	पवयणवच्छत्तभावणा	१०८
१७.	परिशिष्ट	११०

पागदभासामूला दिस्सदि ववहार भारदे देसे।
पादेसिगभासासुं अज्जवि सद्दा सुणज्जंति॥१॥

माआअ जा भासा सा सव्वेसिं हियए देदि सुहं।
णेहो सहजे जायदि परोप्परं भासमाणाणं॥२॥

भासा सद्दवियारो भासाए सव्वभावसब्भावो।
भासाए संकारो संकदिविण्णाणसुहसमायारो॥३॥

—मुनि प्रणम्यसागर

प्राकृत भाषा मूल है। भारतदेश में इसका व्यवहार दिखाई देता है।
प्रादेशिक भाषाओं में आज भी प्राकृत के शब्द सुने जाते हैं॥1॥

माता की जो भाषा है वह सभी के हृदय में सुख देती है।
माँ की भाषा में परस्पर बोलने वालों में स्नेह सहज उत्पन्न होता है॥2॥

भाषा शब्द का विकार है, भाषा से ही सभी भावों का सद्भाव होता है,
भाषा से ही संस्कार होता है, भाषा से ही संस्कृति, विज्ञान और सुख का आचरण होता है।

प्रथम खण्ड

पौराणिक कथाएँ

(१) अंजणचोरकहा

मगहदेसस्स राजगिहणयरे जिणदत्तसेट्ठी आसि। सो खलु जिणिंदभत्तो सहावेण धम्मिल्लो पूयादाणसीलोववास-धम्मेण सह सदा णिवसीइ। एगदा सो उववासस्स णियमं गहिय किण्हपक्खस्स चउद्दसीदिवसे मसाणे काउसग्गेण ट्ठिदो। तदाणिं अमिअपहविज्जुअपहणामा बे देवा अण्णोण्णस्स धम्मपरिक्खाकरणट्ठं विहरंता तत्थ समागदा। तं सेट्ठिणं विलोइय अमिअपहदेवो विज्जुअपहं कहेदि- अम्हाणं मुणीणं वत्ता दु दूरं हवे, एदं गिहत्थं तुमं झाणेण विचलहि। तदणंतरं विज्जुअपहदेवेण जिणदत्तस्स उवरि अणेयपयारेण उवसग्गो कदो तो वि ण सो झाणेण विचलइ। पादो सगमायाकिरियं थंभिय विज्जुहपहदेवेण सो पसंसिदो। तेण आगासगामिणी विज्जा य पदत्ता। तेण वुत्तं च- तुज्झ एसा विज्जा सिद्धा अण्णेसिं तु पंचणमोक्कारमंतेण सह आराहणविहिं किच्चा सिज्झिसिइ। सेट्ठी पइदिणं सिज्झविज्जाबलेण अकिट्टिमजिणालयवंदणाकरणट्ठं सुमेरुपव्वदं गच्छेइ। जिणदत्तस्स गिहे एगो सोमदत्तणामा वडुअबंभचारी चिट्ठेइ। सो जिणदत्तस्स पइदिणं पूयासामग्गिं समप्पेदि। एगस्सिं दिवसे सोमदत्तो सेट्ठिणं पुच्छेइ- पादो पइदिणं कत्थ गच्छसि। तेण वुत्तं- अकिट्टिमजिणालआणं वंदणट्ठं पूयणट्ठं च। सव्वघडिदघडणा कहिदा। सोमदत्तो वोल्लेदि- मज्झ वि विज्जं देउ जेण तेण सह अहं वि गच्छहिमि पूयाभत्तिं च करिस्सामि। जिणदत्तेण विज्जासिद्धीए विही कहिओ।

तदणुसारेण सोमदत्तो किण्हपक्खस्स चउद्दसीरत्तीए मसाणे वडरुक्खस्स पुव्वदिसाए साहाए सदुत्तरअट्ठरज्जूणं एगमुंजसींगं बंधेइ। हेट्ठिल्लं सव्वपयारेण तिक्खसत्थाणि उवरिमुहेण भूमीए णिक्खेवइ। पूयासामग्गिं गहिय सींगमज्झे तेण पविट्ठो। बे उववासणियमेण सह पंचणमोक्कारमंतं उच्चरिय एगेगरज्जुकत्तणे उवजुत्तो। हेट्ठाए उज्जलसत्थसमूहं पासिय भीदेण विचारेइ- जं सेट्ठिवयणं असच्चं हवे तो मरणं होज्ज। तेण संकियचित्तो पुणो पुणो आरोहणावरोहणं कुणदि।

तदाणिं राजगिहणयरीए एगा अंजणसुंदरी णामा वेस्सा णिवसीअ। ताए कणयपहरायस्स कणयाराणीए हारो दिट्ठो। रत्तीए जदा अंजणचोरो वेस्सागिहे समागदो, ताए कहिदं- जदि कणयाराणीए हारं दाएज्ज तो मे भत्ता, ण अण्णहा। चोरो तं आसासं दत्ता गदो। रत्तीए हारं चोरिय धावंतो हारपयासेण अंगरक्खेहि दिट्ठो। तं गहिदुं कोट्टपालादओ धावेंति। हारं मुंचिय धावंतो सो मसाणे सोमदत्तं वडुयं पासेइ पुच्छेइ य किं करोसि एत्थ। तेण सव्वं कहिदं। णमोक्कारमंतं सुणिय छुरिं गेण्हिदूण सिग्घं चढिय सींगम्मि उवट्ठिदो होदूण णिसंकेण एगवारम्मि असेसरज्जुसमूहं कत्तेदि। तदा सो पुण्णमंतं विम्हरेण ण पढदि विचारेदि तेण अंते 'आणं ताणं' इच्चादियं भणिदं। अदो तेण वि 'आणं ताणं ण किंचि जाणे सेट्ठिवयणं पमाणं' इदि मंतेण विज्जासिद्धी कदा। सिद्धिंगया विज्जा पुच्छेइ- आणं पदेउ। चोरेण वुत्तं- जिणदत्तसेट्ठिणियडं णयेज्ज। तक्काले सेट्ठी सुदंसणमेरूणं चेइयालए पूयं कुणंतो ट्ठिदो। एकक्खणे विज्जाए तस्समीवं णीदो। सेट्ठिचरणं फासिय बोल्लेइ- जहा ते उवएसेण विज्जा सिद्धी जादा तहा परलोयस्स वि सिद्धीए विज्जा दायव्वा। सेट्ठी चोरं चारणइड्ढिमुणिसमीवं णेइ। तत्थ सो दियंबरदिक्खं गहिय घोरतवं कुणिय केलासपव्वदे केवलणाणं उववज्जिय मोक्खं गदो।

❑ ❑ ❑

(१) अञ्जन चोर की कथा

मगधदेश के राजगृह नगर में जिनदत्त श्रेष्ठी थे। वह जिनेन्द्रभक्त थे, स्वभाव से ही धर्मात्मा थे और पूजा, दान, शील, उपवास धर्म के साथ सदा रहते थे। एक बार वह उपवास का नियम ग्रहण करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन श्मसान में कयोत्सर्ग से स्थित थे। उसी समय पर अमितप्रभ और विद्युतप्रभ नाम के दो देव एक-दूसरे के धर्म की परीक्षा करने के लिए विहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन श्रेष्ठी को देखकर के अमितप्रभ देव विद्युतप्रभ देव से कहते हैं हमारे मुनियों की बात तो दूर रहे इस ग्रहस्थ को ही तुम ध्यान से विचलित करो तदनन्तर विद्युतप्रभ देव ने जिनदत्त के ऊपर अनेक प्रकार के उपसर्ग किए। तो भी वह जिनदत्त ध्यान से विचलित नहीं हुए। प्रातः अपनी माया क्रिया को रोककर के विद्युतप्रभ देव ने जिनदत्त की प्रशंसा की, जिससे जिनदत्त को आकाशगामी विद्या प्रदान की और विद्युतप्रभ देव के कहा-तुम्हारे लिए यह विद्या सिद्ध है किंतु अन्य के लिए तो पंचनमस्कार मंत्र के साथ में आराधना की विधि करके ही सिद्ध होगी। श्रेष्ठी प्रतिदिन सिद्ध की हुई विद्या के बल से अकृत्रिम जिनालयों की वंदना करने के लिए सुमेरुपर्वत पर चले जाते हैं। जिनदत्त के गृह में एक सोमदत्त नाम का बटुक ब्रह्मचारी रहता था। वह जिनदत्त को पतिदिन को प्रतिदिन पूजन सामग्री समर्पित करता था। एक दिन सोमदत्त सेठजी से पूछता है-प्रातः प्रतिदिन आप कहाँ जाते हैं? सेठजी ने कहा-अकृत्रिम जिनालयों की वंदना करन के लिए, पूजा करने के लिए जाता हूँ। सभी घटित घटना को भी उन्होंने कह दिया। सोमदत्त कहता है-मेरे लिए भी यह विद्या प्रदान करो जिससे कि आपके साथ हम भी चलेंगे और पूजा भक्ति करेंगे। जिनदत्त ने विद्या सिद्ध करने की विधि सोमदत्त को बता दी।

उस विधि के अनुसार सोमदत्त कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में श्मसान में वटवृक्ष के नीचे पूर्व दिशा की शाखा पर एक सौ आठ रस्सियों का एक मुञ्चिका सीका बाँधता है। उसके नीचे सभी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों को ऊपर मुख करके भूमि पर निक्षिप्त करता है (भूमि में गाढ़ता है)। पूजन सामग्री को ग्रहण करके सीके की बीच में वह वहाँ प्रविष्ट हो जाता है। दो उपवास के नियम के साथ पंचनमस्कार मंत्र का उच्चारण करके एक-एक रस्सी को काटने में लग जाता है। नीचे शस्त्र समूह को देखकर के डरता हुआ विचार करता है-यदि श्रेष्ठी के वचन असत्य हुए तो मरण हो जाएगा जिससे शंकित चित्त होने से वह पुनः-पुनः उस वृक्ष पर आरोहण और अवरोहण करने लग जाता है।

उसी समय पर राजगृह नगर में एक अंजनसुन्दरी नाम की वेश्या रहती थी। उसने कनकप्रभ राजा की कनकारानी का हार देखा था। रात्रि में जब अंजन चोर वेश्या के गृह में आया तब उस वेश्या ने कहा यदि कनकारानी का हार लाकर के दोगे तो मैं तुम्हारी हूँ, तुम मेरे स्वामी हो, अन्यथा नहीं। चोर उसको आश्वासन देकर के चला गया। रात्रि में हार को चुराकर के दौड़ता हुआ हार के प्रकाश से अंगरक्षकों के द्वारा देख लिया गया। उस चोर को पकड़ने के लिए कोट्टपाल आदि दौड़ने लगे। हार को छोड़कर के दौड़ता हुआ वह श्मसान में सोमदत्त बटुक को देखता है और पूछता है-यहाँ क्या कर रहे हो? उसने सब कह दिया। णमोकार मंत्र को सुनकर के छुरी को लेकर के वृक्ष पर चढ़कर के सीके में बैठ गया, सीके में बैठकर के निःशंक होकर के एक बार में ही समस्त रस्सियों के समूह को उसने काट दिया। उसी समय पर वह पूर्ण मंत्र के विस्मरण होने जाने से उसे पढ़ता नहीं है और विचार करता है कि उस श्रेष्ठी ने अंत में आणम् ताणम् इत्यादि कहा था इसलिए वह भी आणम ताणम न किंच् जाणे सेट्टी वयणं प्रमाणं अर्थात् आणम ताणम में कुछ नहीं जानता श्रेष्ठी के वचन प्रमाण हैं। इस मंत्र से उसने विद्या सिद्ध कर ली। सिद्धि को प्राप्त हुई विद्या पूछती है-आज्ञा प्रदान करें। चोर ने कहा-जिनदत्त श्रेष्ठी के निकट ले चलो, उसी समय पर श्रेष्ठी सुदर्शनमेरु के चैत्यालय में पूजा करते हुए स्थित थे। एक ही क्षण में विद्या के द्वारा वह चोर उनके समीप ले जाया गया। श्रेष्ठी के चरणों को स्पर्श करते हुए कहता है जिस प्रकार आपके उपदेश से विद्या सिद्ध हुई है उसी प्रकार परलोक की सिद्धि की विद्या भी प्रदान करें। श्रेष्ठी चोर को चारणऋद्धिधारी मुनि के समीप ले जाते हैं और वहाँ पर वह चोर दिगम्बर दीक्षा को ग्रहण करके, घोर तप को करके कैलाशपर्वत पर केवलज्ञान को उत्पन्न करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

❑ ❑ ❑

(२) अणंतमईकहा

अंगदेसस्स चंपाणयरीए राया वसुवद्धणो आसि। तस्स महिसी लक्खीमई आसि। तण्णयरे एगो पियदत्तो सेट्ठी अंगवईवणिदाए सह सुहेण णिवसीइ। तेसिं एया अणंतमई णामा रूववई अइकुसला जिणधम्मप्पिया कण्णा अत्थि। एगदा णंदीसर-अट्ठाणिहपव्वस्स अट्ठमीदिवसे धम्मकित्तिआइरियस्स पादमूले तेहिं माउपियरेहिं अट्ठदिवसं जाव ताव बंभचेरवदं गिहीदं। कीडाए सेट्ठिणा अणंतमईअ वि वदं गेण्हाविदं। जदा कण्णाए विवाहस्स अवसरो संजादो तदा सा कहेदि- पिअर! तुमए बंभचेरवदं गेण्हाविदं तदा, पुण इदाणिं विवाहेण किं पओजणं? सेट्ठिणा वुत्तं- मए तुमं कीडावसेण वदं गेण्हाविदं, ण पुण जहत्थेण। सा कहेदि- वदविसए धम्मकज्जे का कीडा। सेट्ठिणा भणियं- वदं वि अट्ठदिवसपज्जंतं आसि, ण पुण सव्वकालस्स। सा भणइ- मुणिराएण तहा ण वुत्तं तेण इह जम्मम्मि मे विवाहस्स सव्वहा परिच्चागोत्थि।

एगदा पुण्णजोव्वणा सा सगघरस्स आरामे आंदोलणे दोलंता आसि। तदा विजयड्ढपव्वदस्स दक्खिणसेढीए किण्णरपुरणयरस्स विज्जाहरणिवो कुण्डलमण्डिओ सुकेसीइत्थीए सह आयासे गच्छीअ। तेण अणंतमइं दिट्ठूण वियारियं- ताए विणा मे जीवणेण किं पओजणं? एवं वियारिय सिग्घं णियवणियं गिहे छंडिय पुणो तत्थ आगदो। विज्जाबलेण तं गहिय गच्छंतेण तेण पच्चागदा णियवणिदा दिट्ठा। भयभीदो विज्जाहरो पण्णलहुविज्जं दाऊण अणंतमइं महाअडवीए छंडेइ। तत्थ विलपंतिं तं विलोइय भिल्लरायो भीमो सगवसदीए गमिय भणदि- 'मे पहाणमहिसीपदं गिण्हहि। ताए ण किंचि कंखिदं। रत्तीए भीलो तं उवभोत्तुं उज्जुदो। वदमाहप्पेण वणदेवदाए सा रक्खिदा भीमो सुट्ठु पीडिदो य। 'इमा काचि देवी अत्थि' त्ति चिंतिय भीदेण भीमेण पुप्फयबंजारिणस्स सा समप्पिदा। तेण वि लोहं दरसिय विवाहस्स इच्छा कदा। ताए ण अब्भुवगदो सो। सो पुणु तं गहिय अजोद्धाणयरीए कामसेणाणामेण खादवेस्साए अप्पिदा। कामसेणा तं वेस्साकज्जे पेरेदि। सा केण वि पयारेण वेस्सा ण जादा। तदो वेस्सा सिंहरायणामहेयस्स रायस्स तं दरिसेदि। ताए रूवसोंदरे आकिट्ठो सेविउं जदा उज्जुदो होदि तदा वदमाहप्पेण णयरदेवदाए रायस्स उवरि उवसग्गो कदो। भएण राएण गिहादो सा णिस्सारिदा। खेदेण कम्मविवागं चिंतमाणा सा चिट्ठेइ तदा कमलसिरीए अज्जियाए दिट्ठा। 'पुव्वकम्मफलेण पीडिदा इमा' एवं चिंतिऊण तए सगसमीवं सरणं दिण्णं।

एगदा पियदत्तसेट्ठो अजोद्धाणयरीए सगसालस्स जिणदत्तसेट्ठस्स घरे समागदो। तस्स सव्वं वुत्तंतं कहेदि। अवरदिणे अतिहिणिमित्तं भोयणकरणट्ठं चउक्कपूरणट्ठं च अज्जाए साविगा सेट्ठिघरं आगारिदा। सा साविगा कज्जं णिट्ठविय वसदीए गदा। पियदत्तसेट्ठेण चउक्कं पस्सिय अणंतमई सुमरिदा। 'काए इदं चउक्कं पूरिदं' एवं पुच्छिदं। तदणंतरं सा साविगा पुणो गिहे आणीदा। जिणदत्तेण 'मे सुदा' त्ति हस्सेण महोच्छवो कदो। घरं गच्छहि त्ति कहिदे अणंतमई कहेदि- पिउ! मए संसारस्स विचित्तिदा दिट्ठा। इदाणिं हं तवं गिण्हामि। तदो सा कमलसिरिअज्जियाए समीवं अज्जिगावदं गहिय अंते संणासेण मरणं काऊण सहस्सारसग्गे देवो जादा।

❑ ❑ ❑

(२) अनन्तमतीकी कथा

अंगदेश की चंपानगरी में राजा वसुवर्धन थे उनकी रानी लक्ष्मीमती थी। उनके नगर में एक प्रियदत्त नाम का श्रेष्ठी अपनी अंगवती स्त्री के साथ सुख से निवास करता था। उनके एक अनंतमती नाम की रूपवान, अतिकुशल, जिनधर्मप्रिय कन्या थी। एक बार नन्दीश्वर के अष्टाह्निक पर्व की अष्टमी के दिन धर्मकीर्ति आचार्य के चरणों (पादमूल) में उन माता-पिता ने आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। क्रीड़ा में अर्थात् खेल-खेल में श्रेष्ठी ने अनंतमती को भी व्रत ग्रहण करा दिया। जब कन्या के विवाह का समय आया तब वह कन्या कहती है कि पिताश्री! आपने तो तब ब्रह्मचर्य व्रत का ग्रहण कराया था अब विवाह से क्या प्रयोजन। श्रेष्ठी ने कहा– मैंने तो तुमको खेल मे ही बह्मचर्य व्रत ग्रहण करा दिया था यथार्थ में नहीं। कन्या कहती है कि–व्रत के विषय में और धर्मकार्य में खेल कैसा? श्रेष्ठी ने कहा–वह व्रत भी आठ दिन पर्यन्त का था हमेशा के लिए नहीं। कन्या ने कहा–मुनिराज ने ऐसा कहा नहीं था इसलिए इस जन्म में मेरे विवाह का सब प्रकार से त्याग है।

एक बार पूर्ण यौवन को प्राप्त हुई वह कन्या अपने घर के बगीचे में झूले में झूल रही थी। उसी समय पर विजयार्ध पर्वत के दक्षिण श्रेणी का किन्नरपुर नगर का विद्याधर राजा कुण्डलमण्डित अपनी स्त्री सुकेसी के साथ आकाश में जा रहा था। उसने अनंतमती को देखकर के विचार किया इसके बिना मेरे जीने का क्या प्रयोजन? इस प्रकार विचार करके शीघ्र ही अपनी वनिता को घर में छोड़कर के वहाँ आ गया। विद्या के बल से उस कन्या को उठाकर ले जाते हुए उसने वापस आती हुई अपनी स्त्री देखी। भयभीत हुआ वह विद्याधर पर्ण-लघु विद्या प्रदान करके अनंतमती को महा अटवी में छोड़ देता है। वहाँ रोती हुई उस कन्या को देखकर के भीलराज भीम अपनी बस्ती में लाकर के कहता है–मेरे प्रधान पट्टरानी पद को ग्रहण करो। अनंतमती ने उसकी प्रधान पट्टरानी पद की किंचित् भी इच्छा नहीं की। रात्रि में वह भील उसका उपभोग करने के लिए उद्यत हुआ। व्रत के महात्म्य से वन-देवता ने उस कन्या की रक्षा की। और उस भीम को खूब पीड़ा दी। यह कोई देवी है ऐसा विचार करके डरे हुए उस भीम ने बनिजारे को वह कन्या समर्पित कर दी। उसने भी लोभ दिखाकर के विवाह की इच्छा की। कन्या ने विवाह स्वीकार नहीं किया। वह उस कन्या को लेकर के अयोध्या नगरी की कामसेना नाम की वेश्या के लिए अर्पित कर देता है। कामसेना उसको वेश्या के कार्य के लिए प्रेरित करती है। वह किसी भी प्रकार से तैयार नहीं होती है तब वह वेश्या सिंहराज नाम के राजा के लिए उस कन्या को दिखाती है। उसके रूप, सौन्दर्य पर आकृष्ट हुआ वह राजा उसके सेवन करने के लिए तैयार होता है तभी व्रत के महात्म्य से नगर देवता के द्वारा राजा के ऊपर उपसर्ग किया जाता है। राजा ने भय से उस कन्या को गृह से निकाल दिया।

खेद से कर्म विपाक का चिंतन करते हुए वह बैठी थी तभी कमलश्री नाम की आर्यिका ने उसको देखा। पूर्व जन्म के कर्म से पीड़ित यह कन्या है ऐसा चिंतन करके उन आर्यिका ने उसे अपने समीप शरण प्रदान की। एक बार प्रियदत्त सेठ अयोध्या नगरी के अपने साले जिनदत्त श्रेष्ठ के घर में आए। वहाँ समस्त वृत्तांत उन्होंने कहा। दूसरे दिन अतिथि के निमित्त भोजन करने के लिए चौक पूरने के लिए आर्यिका की श्राविका उन श्रेष्ठी के घर बुलाई गई। वह श्राविका अपने कार्य को पूर्ण करके वापस बस्ती में चली गई। प्रियदत्त सेठ ने चौक को देखकर अनंतमती का स्मरण किया। सेठ ने पूछा–किसने यह चौक पूरा है? तदनंतर वह श्राविका पुनः गृह में बुलाई गई। प्रियदत्त ने कहा–ये मेरी बेटी है। इस प्रकार हर्ष से महोत्सव किया। घर चलो, इस प्रकार कहने पर अनंतमती ने कहा–पिताश्री! मैंने संसार की विचित्रता को देख लिया है। अब मैं तप को ग्रहण करूँगी। तदनन्तर वह कन्या कमलश्री आर्यिका के समीप आर्यिका के व्रतों को ग्रहण करके अंत में संन्यासमरण करके सहस्त्रार स्वर्ग में देव होती है।

❑ ❑ ❑

(३) उद्दायणरायकहा

एगदा सग्गे सोहम्मिंदो सगसभाए धम्मचच्चाविसए वरिवट्टइ। सोहम्मिंदेण असंखदेवेसु मज्झे वच्छदेसस्स रोरयपुरणयरवासी उद्दायणरायो पसंसिदो। सो कहेदि- णिव्विदिगिंछागुणे ण को वि तेण तुल्लोत्थि। तस्स परिक्खाकरणट्ठं एगो वासवदेवो आगदो। तेण विकिरियारिद्धीए एगमुणिरूवं णिम्माविदं। तस्स सरीरं अइदुग्गंधं गलिदकुट्ठेण सहिदं च अत्थि। सगगिहंगणे समक्खं समागदमुणिं दिट्ठूण भत्तीए णिवेण पडिग्गहिदो। णवहाभत्तिपुव्वियं भोयणं दिण्णं। मायाए मुणिणा सव्वाहारजलं गिहीदं। तदणंतरं तत्थेव अच्चंतदुग्गंधियवमणं कदं। दुग्गंधेण सव्वे परिजणा पलाइदा। राया सगमहिसीए सह मुणिरायस्स परिचरियाए संलग्गो। पुणो वि मुणिणा उहयस्स सरीरे वमणं कदं। तो वि 'मए किंचि विरुद्धं भोयणपाणं दिण्णं' त्ति भएण अप्पणिंदणं कुव्वंतो खमं जाचेइ। तेण सगसरीरं पक्खालिय मुणिसरीरं पक्खालिदं। 'मुणिरायस्स सरीरं रयणत्तएण पवित्तं ण घिणाजोग्गं' एवंविहभावणं तस्स परिलक्खिय देवो मायारूवं चइऊण सगसरूवे पयडेइ। सव्ववुत्तंतं कहिय रायस्स पसंसणं किच्चा सग्गे गदो। पच्छा सो राया वड्ढमाणभयवंतस्स पादमूले तवं गहिऊण मोक्खं गदो। राणी पहावदी तवपहावेण सग्गे देवो भवीअ।

❑ ❑ ❑

विज्जावंतो लोगे पसंसिदो होदि सगपरजणेहिं।
मउडेसु य मोलिव्व अग्गिमट्ठाणे हि वट्टेदि॥
—अनासत्तयोगी २/४

(३) उद्दायन राजा की कथा

एक बार अपनी सभा में सम्यग्दर्शन के गुणों का वर्णन करते हुए सौधर्मेन्द्र धर्म चर्चा कर रहे थे उन्होंने वत्स देश के रौरकपुर नगर के राजा उद्दायन महाराज के निर्विचिकित्सित गुण की बहुत प्रशंसा की, निर्विचित्सा गुण में उस राजा की तुलना में कोई नहीं। उसकी परीक्षा करने के लिये एक वासत्र नामका देव आया। उसने विक्रियासे एक ऐसे मुनिका रूप बनाया जिसका शरीर उटुम्बर कुष्ठ (झरते हुए कष्ट) रोग से सहित था। अपने घर के निकट आये हुए अतिथि का राजा ने भक्तिपूर्वक पड़गाहन किया। उस मुनि ने विधिपूर्वक खड़े होकर उसी राजा उद्दायन के हाथसे दिया हुआ समस्त आहार और जल माया से ग्रहण किया। पश्चात् उसी स्थान पर अत्यन्त दुर्गन्धित वमन कर दिया। दुर्गन्ध से परिवार के सब लोग भाग गये, परन्तु राजा उद्दायन अपनी रानी प्रभावती के साथ मुनि की परिचर्या करता रहा। मुनि ने पुनः उन दोनों के ऊपर ही वमन कर दिया। हाय-हाय मेरे द्वारा विरुद्ध आहार दिया गया है इस प्रकार अपनी निन्दा करते हुए राजा ने क्षमायाचना करते हुए मुनि का प्रक्षालन किया। मुनिराज का शरीर रत्नत्रय से पवित्र है वह घृणा के योग्य नहीं है यह भावना देखकर अन्त में देव अपनी माया को समेटकर असली रूप में प्रकट हुआ और पहले का सब समाचार कहकर तथा राजा की प्रशंसा कर स्वर्ग चला गया। उद्दायन महाराज वर्धमान स्वामीके पादमूल में तप ग्रहण कर मोक्ष गये और रानो प्रभावती तप के प्रभाव से ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

❑ ❑ ❑

विद्यावान लोक में स्वजन और परजन से प्रशंसित होता है।
ऐसा पुत्र मुकुटों में मौलि के समान अग्रिमस्थान पर ही रहता है॥अ.यो.॥

(४) रेवदीराणीकहा

गुत्ताचारियस्स पासत्थो एगो खुल्लओ उत्तरमहुराए गंतुं उज्जुदो। पुच्छिदं च तं–कस्स किं समायारो वत्तव्वो ? गुत्ताइरिएण वुत्तं–सुव्वदमुणिं वंदिय वरुणरायस्स रेवदीराणीआ आसीवादं कहउ। तिण्णिवारं पुच्छिदं। उत्तरं दु एगमेव। तदा खुल्लएण चिंतिदं किं कारणं जं–भव्वसेणाइरियस्स अण्णमुणिगणस्स य किंचि वि समायारो ण कहिदो। मणम्मि एवं चिंतिय सो तत्थगदो। सुव्वदमुणिं णमिय सो तस्स वच्छलेण पुट्ठो जादो। तदणंतरं भव्वसेणस्स वसदिगाए गदो। तेण मुणिणा वत्ता ण कदा। खुल्लओ भव्वसेणेण सह उच्चारपस्सवणसुद्धीए गदो। खुल्लएण विकिरियाए अग्गमग्गो हरिदकोमलतिणबीजेण आच्छादिदो। तं दिट्ठूण आगमे दु सव्वण्हुणा एदे जीवा इदि भणिदा तहावि तस्सुवरि पादमङ्गेण णिग्गदो। उच्चारसमए विकिरियाए कुण्डिगाजलं सोसिय खुल्लएण कहिदं–भंते! कुण्डियाए जलं णत्थि। एत्थ कत्थ वि जलं गोमओ वि ण दीसदि तेण अस्स सरोवरस्स जलेण मिट्टियाए सह उच्चारकिरिया कादव्वा। तेण पुव्वं व भणिय किरिया कदा। तदा तं मिच्छाइट्ठी त्ति णाऊण तस्स णाम अभव्वसेणो कदो।

तदणंतरं कइ दिवसाणंतरं पुव्वदिसाए खुल्लएण जण्णोववीदजुत्तो पउमासणेण ट्ठिदो चउमुहो बम्हरूवो विकिरियाए कदो। तस्स वंदणा सुरासुरेहिं कीरदि त्ति पस्सिदूण राओ सव्वपजाजणो अभव्वसेणमुणी चेदि सव्वे गदा। सव्वजणेहिं पेरिज्जमाणा वि रेवदी ण तत्थ गदा। तहेव तेण दक्खिणदिसाए गरुडारूहं चउभुजसहिदं। चक्कगदासंखासिधारगं वासुदेवरूवं कदं। सव्वे जणा गदा रेवदी तहावि ण गदा। पुणो उत्तरदिसाए समवसरण मज्झे अट्ठपाडिहेरसहिदं सुरासुरमणुजविज्जाहरमुणिसमूहेहि वंदिदं परियंकासणेण ठिदं तित्थयररूवं दरिसिदं। तत्थ सव्वे तं रूवं दिट्ठुण गदा रेवदी ण गदा। रेवदीए चिंतिदं–चउवीसं तित्थयरा वसुदेवा णव एक्कारसरूद्दा सव्वे वि तीदकाले संभूदा, वट्टमाणकाले तेसिमहावो जिणागमे तक्कहणाहावो य।

सो खुल्लओ अवरदिणे रोगेण परिक्खीणदेहो आहरचरियाकाले रेवदीए गिहस्स समीवं गदो। सो मायाए मुच्छिदो पडिदो य। रेवदी एवं सुणिदूण सिग्धं गिहादो बहि गदा। अण्णजणेहिसह भत्तीए गिण्हदूण गिहमज्झे उवयारेण कदेण सो सुट्ठु जादो। आहारं किच्चा तेण दुग्गंधं वमणं कदं। वमणं सगङ्गेहं च पक्खालिय पच्छातावेण रोदणं कदवदी सा जादा तदा संतुट्ठो खुल्लओ सव्ववितंतं कहीअ। गुरूणा पदत्तं आसीवादं च भासीअ। इदि सम्मङ्सणभवरहिदो भव्वसेणो दव्वसमणो मूढ़त्तादो होइ। तदो रेवदीसरिसं जिणागमभावेण पवट्टेयमिदि।

❑ ❑ ❑

(४) रेवती रानी की कथा

गुप्ताचार्य के पास एक क्षुल्लकजी उत्तर मथुरा में जाने के लिए तैयार हुए। उन्होंने आचार्यदेव को पूछा किस को क्या समाचार कहना है? गुप्ताचार्य ने कहा सुव्रतमुनि की वन्दना करके, वरुणराजा की महारानी रेवती को आशीर्वाद कहना। क्षुल्लकजी ने उनसे तीन बार पूछा कि अन्य किसी को तो और कुछ नहीं कहना? गुप्ताचार्य का उत्तर तो एक ही था। तब क्षुल्लक ने विचार किया कि ऐसा क्या कारण हो सकता है, जो भव्यसेन आचार्य को और अन्य मुनियों के लिए उन्होंने कुछ भी समाचार नहीं कहा। मन में इस प्रकार से चिन्तन करके वह वहाँ गये। सुव्रतमुनि को नमस्कार करके वह उनके वात्सल्य से पुष्ट हुए। तदनन्तर भव्यसेन की वसतिका में गये, भव्यसेन मुनि ने उनसे कोई वार्ता नहीं की। क्षुल्लक भव्यसेन के साथ में उच्चार प्रस्रवण शुद्धि के लिए गये। क्षुल्लक ने विक्रिया से आगे के मार्ग को हरित कोमल तृण बीजों से आच्छादित कर दिया। उसको देखकर ''आगम में सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा ये जीव कहे गये हैं'' इस प्रकार कहते हुए भी फिर उसी के ऊपर से पाद मर्दन करते हुए निकल गये। शौच के समय पर क्षल्लक ने विक्रिया से कमण्डलु के जल को सुखा दिया और क्षुल्लकजी ने कहा–भन्ते! कमण्डलु में जल नहीं है और यहाँ पर कहीं भी जल और गौमय (गोबर) भी दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए इस सरोवर के ही जल से और मिट्टी से शौच क्रिया कर लेनी चाहिए। उस भव्यसेन ने पहले के समान ही कि 'सर्वज्ञ भगवान ने आगम में ये जीव कहे हैं' इस प्रकार कहकर वह क्रिया कर ली। तब यह मिथ्यादृष्टि है यह जानकर के उसका नाम क्षुल्लकजी ने अभव्यसेन कर दिया। तदनन्तर कितने ही दिनों के बाद पूर्व दिशा में क्षुल्लक जी ने यज्ञोपवीत से युक्त पद्मासन में स्थित चतुर्मुख ब्रह्म का स्वरूप विक्रिया से किया। उसकी वन्दना सुर-असुर आदि कर रहे हैं इस प्रकार से दिखाकर के राजा, सभी प्रजाजन, अभव्यसेन मुनि आदि सभी वहाँ गये। सभी के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी रेवती रानी वहाँ नहीं गयी। इसी प्रकार उस क्षुल्लक ने दक्षिण दिशा में गरुढ़ पर आरूढ़ चतुर्भुज से सहित चक्र, गदा, शंख, तलवार को धारण करने वाले वासुदेव का रूप बनाया। सभी लोग गये लेकिन रेवती रानी वहाँ पर भी नहीं गई। पुनः क्षुल्लक ने उत्तर दिशा में समवशरण के बीच में आठ प्रातिहार्यों से सहित सुर-असुर, मनुष्य, विद्याधर मुनि समूह से वंदित पर्यंकासन पर बैठे हुए तीर्थंकर का रूप दिखाया। वहाँ पर भी सभी लोग उस रूप को देखने के लिए गए। रेवती नहीं गई। रेवती रानी ने सोचा–तीर्थंकर चौबीस हैं, वासुदेव नौ हैं, रुद्र ग्यारह हैं, ये सब अतीतकाल में हुए हैं। वर्तमानकाल में इनका अभाव है और जिनागम में इसके कथन का अभाव है। वह क्षुल्लक फिर दूसरे दिन रोग से अपनी देह को बिल्कुल क्षीण कके आहारचर्या के लिए रेवती के समीप गया। वहाँ वह माया से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। रेवती इस प्रकार सुनकर शीघ्र घर से बाहर आई, अन्य जनों के साथ भक्ति से उसको ग्रहण करके घर के भीतर ले गई और उपचार किया। जिससे वह ठीक हो गया। आहार करके उस क्षुल्लक ने दुर्गन्धित वमन कर दिया। वमन और अपने शरीर को प्रक्षालित करके पश्चात्ताप से वह रोती हुई स्थित थी तभी संतुष्ट हुए क्षुल्लक ने सब वृत्तान्त कह दिया। गुरु के द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद भी कह दिया। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के भाव से रहित भव्यसेन, द्रव्यश्रमण मूढ़ता के कारण हुआ। इसलिए रेवती के समान जिनागम की भावना से प्रवर्तित करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

(५) जिणिंदभत्तसेट्ठकहा

सुरट्ठदेसस्स पाडलिपुत्तणयरे राओ जसोहरो वरिवट्टइ। तस्स राणी णाम सुसीमा। तेसिं सुवीरो णाम पुत्तो अत्थि। पुत्तो सत्तविसणेसु संलग्गो अच्छइ। सो खु चोरपुरिसेहिं सेविदो हरिसइ। कदाचि तेण सुणिदं– 'पुव्वगोडदेसस्स तम्मलित्तणयरीए जिणिंदभत्तो णाम सेट्ठी णिवसइ। तस्स सत्तखण्डपासादस्स उवरि अणेयकोट्टवालेहि रक्खिदा सिरिपारसणाह–जिणिंदस्स पडिमा अत्थि। ताए उवरि छत्तत्तएसु अणग्घवेडूरिअमणिविसेसो लग्गेदि।' सुवीरेण चोरपुरिसा पुच्छिदा– किं कोवि मणिं लाउं समत्थोत्थि? सूरियणामचोरो बोल्लेदि उच्चसरेण– एअम्मि किं विसिट्ठं? हं तु इंदस्स मउडे चिट्ठमाणमणिं वि गहिदुं सक्केइ। एवं कहिय सो तत्तो णिग्गदो। कवडेण खुल्लयभेसं धरिदूण कायकिलेसतवेण सव्वत्थ गामणयरेसु खोहं कुणंतो तम्मलित्तणयरीए समागदो। अइपसंसाए खोहं पत्तेण सेट्ठिणा जदा तव्विसए सुदं तदा तत्थ गओ। दंसणं किच्चा वंदित्ता वत्तालावं च करिय खुल्लयं सगगहे आणेज्ज। पासदेवस्स दंसणं काराविदा। तत्थेव ठादुं पत्थणा कदा। अणिच्छंतो वि मायाए सेट्ठी मणिरक्खियत्तेण तं णिउंजेदि। एयस्सिं दिवसे खुल्लयं णिवेदिय सेट्ठी समुद्दजत्ताए पट्ठिदवंतो। णयरत्तो बहि गंतूण सो ठादि। मज्झरत्तीए मणिं गहिय चोरखुल्लओ गच्छइ। मणिपयासेहि मग्गे गच्छंतो सो कोट्टवालेहिं दिट्ठो। ते तं गहिदुं पच्छा लग्गंति। मे ण दाणिं को वि सरणं त्ति चिंतिय सो सेट्ठस्स सरणं पावेदि। रक्खहि रक्खहि त्ति भासिदं। कोट्टवालाणं सद्दं सुणिय सेट्ठी पुव्वावरवियारेण बोल्लइ– मे कहणेणेव एदं रयणं एत्थ आणेइ। तुम्हेहिं महावराहो कदो जं एवंविहतवस्सिणो चोरो त्ति घोसिदो। सेट्ठिवयणं पमाणं किच्चा ते कोट्टवाला पुणो पडिणिजंति। सेट्ठेण रत्तीए चोरो अण्णत्थ पेसिदो। एवंपयारेण सम्मादिट्ठीहि बालासमत्थजणकारणेण मोक्खमग्गम्मि जणिददोसो णिवारेदव्वो।

❑ ❑ ❑

जो जं इच्छदि पुरिसो तव्विसए खु रत्तिदिवं चिंतेदि।
णिद्दाभोयणमण्णं कज्जं ण हि रोचदे रुइगो॥
—अनासक्तयोगी ३/१८

(५) जिनेन्द्रभक्त सेठकी कथा

सुराष्ट्र देश के पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोधर रहते थे। उनकी रानी का सुसीमा था। सुवीर नाम का पुत्र था। पुत्र सप्तव्यसनों में संलग्न था। वह चोर पुरुषों के द्वारा सेवित था और प्रसन्न था। कभी उसने सुना–पूर्वगौड़ देश के ताम्रलिप्त नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ निवास करते हैं। उनके सप्तखण्ड प्रासाद के ऊपर अनेक कोट्टपालों से रक्षित श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र की प्रतिमा है। उसके ऊपर लगे छत्रत्रय में अनर्घ वैडूर्यमणि विशेष लगा है। सुवीर ने चोर पुरुषों से पूछा–क्या कोई भी उस मणि को लाने में समर्थ है? सूर्य नाम के चोर ने उच्च स्वर से कहा–इसमें क्या विशेषता है? मैं तो इन्द्र के मुकुट पर लगी हुई मणि को भी ग्रहण करके ला सकता हूँ। इस प्रकार कहकर के वह वहाँ से चला गया। कपट से क्षुल्लक वेश को धारण करके कायक्लेश से सर्वत्र ग्राम और नगरों में क्षोभ करता हुआ ताम्रलिप्त नगरी में पहुँचा। अतिप्रशंसा के द्वारा क्षोभ को प्राप्त होने से श्रेष्ठी के द्वारा जब उसके विषय में सुना गया तो वे भी वहाँ गये दर्शन-वंदना करके वार्तालाप करके श्रेष्ठी क्षुल्लकजी को अपने गृह में ले आये। पार्श्वनाथदेव का दर्शन कराया, वहीं पर रहने के लिए प्रार्थना की, नहीं चाहते हुए भी माया से श्रेष्ठी ने मणि की रक्षा करने के लिए श्रेष्ठी ने उनको वहीं पर रख दिया।

एक दिन श्रेष्ठी क्षुल्लकजी को निवेदन करके समुद्र की यात्रा के लिए प्रस्थान किये। नगर के बाहर जाकर के वह स्थित हो गये। मध्यरात्रि में उस मणि को लेकर चोर क्षुल्लक चला जाता है। मणि के प्रकाश से मार्ग में जाते हुए वह कोट्टपालों के द्वार वह देखा गया। वे कोट्टपाल उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे लग जाते हैं। मेरे लिए अब कोई भी शरण नहीं है ऐसा विचार करके वह श्रेष्ठी की शरण को प्राप्त कर लेता है। मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो! इस प्रकार से वहाँ पहुँचकर वह कहता है। कोट्टपालों के शब्दों को सुनकर वह श्रेष्ठी पूर्वापर विचार करते हुये वह बोलते हैं–मेरे कहने से ही यह रत्न वह यहाँ लाया है। तुम लोगों ने महान अपराध किया है जो इस प्रकार के तपस्वी को 'चोर' ऐसा घोषित किया। श्रेष्ठी के वचनों को प्रमाण करके वे कोट्टपाल वहाँ से वापिस लौट जाते हैं। सेठ ने रात्रि में चोर को अन्यत्र स्थान पर भेज दिया। इस प्रकार से सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा बाल और असमर्थ लोगों के द्वारा मोक्षमार्ग में दोषों का निवारण करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

जो पुरुष जिसकी इच्छा करता है वह उसके विषय में रात-दिन चिंता करता है।
निद्रा, भोजन और अन्य कार्य उस अभिलाषी को रुचते नहीं हैं॥१८॥ अ.यो.

(६) वारिसेणमुणिकहा

मगहदेसस्स रायगिहणयरे राआणो सेडिगो रज्जं पालीअ। राणी चेलिणी जिणधम्मवासिदमणा आसि। तेसिं बुद्धिणिउणो जिणधम्मालु वारिसेणो णाम जोग्गो पुत्तो उत्तमसावगधम्मं पालेदि। एगस्सिं उववासजोगेण चउदसतिहीए रत्तीए मसाणे काउसग्गेण ट्ठिदो धम्मझाणेण अप्पाणं चिंतेइ। तम्मि दिवसे उज्जाणे मगहसुंदरीए णयरवेस्साए सिरिकित्तिसेट्ठिणीअ कण्ठे मणोहरहारो अवलोइओ। तेण हारेण विणा मे जीवणस्स किं पओजणं? त्ति वियारिय सगगिहे सेज्जाए विलपंती अच्छेइ। ताए आसत्तो विज्जुअचोरो रयणीए तग्गिहे आगदो। अरे कंता! एवं उदासेण किह चेट्ठसि? सा कहेदि-जदि जहत्थेण तुमं पेम्मं कुणसि तो सिरिकित्तिसेट्ठिणीअ कंठगयहारं आणेज्ज। तदा खु मे जीवणं, ण अण्णहा, तदा खु तुमं मे सामी होहिसि, ण अण्णहा। वेस्साए एवं वयणं सुणिऊण तं आसासिय चोरो मज्झरत्तीए सेट्ठिणीघरे गओ। अइणिउणेण तेण हारो चोरिदो। बहि णिग्गमणकाले हारपयासेण एसो तक्करो त्ति जाणिय गिहरक्खगेहि कोलाहलो कदो। कोट्टवालेहि पच्छा धावंतेहि जदा चोरो पलाइउं असक्को तदा मसाणे ट्ठिदस्स वारिसेणस्स समक्खं हारं णिक्खविय गुम्मेसु लुक्कइ। वारिसेणसमीवं हारं दिट्ठूण कोट्टवालेहिं कहिदं- राय! वारिसेणो चोरोत्थि। एवं सुणिय राआणो कहेदि- तस्स मुक्खस्स मत्थयं छिंदिय आणेयव्वं। चंडालेण तदट्ठं वारिसेणस्स मत्थए तलवारो चालिदो। तलवारो खलु पुप्फमालारूवेण कंठे परिवट्टइ। तदइसयं सुणिदूण राया वारिसेणत्तो खमं पत्थेइ। विज्जुअचोरेण अभयदाणं पाविय राआणस्स सव्ववुत्तंतं वुत्तं। चोरो वारिसेणं घरं पडि गंतुं उज्जुदो। वारिसेणो भासेइ- दाणिं हं खु पाणिपत्तम्मि भोयणं करिस्सामि। तदो सूरसेणगुरुसमीवं मुणी जादो।

एयदा सो मुणी रायगिहस्स णियडवट्टिणं पलासकूडगामं आहारचरियाए पविट्ठो। तत्थ सेणिगणिवस्स अग्गिभूदिमंतिपुत्तेण पुप्फडालेण मुणी पडिग्गहिदो। चरियाणंतरं किंचि दूरं बालकालस्स मित्तकारणादो पेसणट्ठं पुप्फडालो गदो। 'पडिणिवुत्तोमि' त्ति अहिप्पाएण सो मुणिं खीररुक्खं दरिसिज्जदि। मुणिणा ण किंचि भणियं। पुणो अग्ग मुणिं वंदेदि तो वि मुणी ण किंचि भणइ। हत्थगहणेण सो मुणिणा सह एयंते णीदो। तत्थ वेरग्गमूलं विसिट्ठधम्मोवएसं सुणिऊण पुप्फडालस्स मणम्मि मसाणवेरग्गं संजादं। तेण तवोकम्मं गिण्हाविज्जीअ। तवं धरंतो वि सो णियवणियं सुमरेइ।

(६) वारिषेण मुनि की कथा

मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य का पालन करते थे। उनकी रानी चेलिनी जिनधर्म में लीन मन वाली थी। उनके बुद्धि में निपुण जिनधर्मालु वारिषेण नाम का योग्य पुत्र था जो श्रावक धर्म का पालन करता था। एक बार वह वारिषेण चतुर्दशी की तिथि में रात्रि को श्मशान में कायोत्सर्ग में स्थित थे और धर्मध्यान से अपनी आत्मा का चिंतन कर रहे थे। उसी दिन उद्यान में मगधसुदरी नगरवेश्या ने श्रीकीर्ति सेठानी के कण्ठ में एक मनोहर हार देखा। इस हार के बिना मेरे जीवन का क्या प्रयोजन? इस प्रकार का विचार करके वह अपने घर में शय्या के ऊपर रोती हुई पड़ी थी। उसी समय पर उस वेश्या में आसक्त विद्युतचोर रात्रि में उसके घर आया। अरे प्रिये! इस प्रकार उदास होकर क्यों पड़ी हो? वह कहती है–यदि यथार्थ में तुम प्रेम करते हो तो श्रीकीर्ति सेठानी के कण्ठ का हार लाकर मुझे दो। तब ही मेरा वास्तव में जीवन होगा अन्यथा नहीं। तभी तुम मेरे पति होगे अन्यथा नहीं। वेश्या के इस प्रकार के वचनों को सुनकर वह चोर उसको आश्वासन देकर के मध्यरात्रि में सेठानी के घर गया। अति निपुण उस चोर ने उस हार को चुरा लिया। बाहर जाते समय हार के प्रकाश से 'यह चोर है' इस प्रकार से जानकर के गृह रक्षकों ने कोलाहल कर दिया। बाद में दौड़ते हुए कोट्टपालों के द्वारा चोर पलायन करने में अशक्य हो गया तब श्मशान में स्थित वारिषेण के समक्ष हार को छोड़कर झाड़ में छुप गया। वारिषेण के समीप हार को देखकर के कोट्टपालों ने कहा–राजन! वारिषेण चोर है। इस प्रकार सुनकर राजा ने कहा–उस मूर्ख का मस्तक छेदकर के ले आओ। चण्डाल ने वैसा ही करने के लिए वारिषेण के मस्तक पर तलवार चलाई। वह तलवार पुष्पमाला के रूप में उसके कण्ठ में परिवर्तित हो गई। उस अतिशय को सुनकर राजा वारिषेण से क्षमा की प्रार्थना करते हैं। विद्युत चोर ने अभयदान प्राप्त करके राजा को समस्त वृत्तांत कह दिया। चोर वारिषेण को घर में पुनः लाने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु वारिषेण ने कहा–अब मैं पाणिपात्र में भोजन करूँगा। तदनन्तर वह सूरसेन गुरु के समीप जाकर मुनि हो गए।

एक बार वह मुनि राजगृह के निकटवर्ती पलाशकूट ग्राम में आहारचर्या के लिए प्रविष्ट हुए। वहाँ श्रेणिक राजा के अग्निभूत मंत्री के पुत्र पुष्पडाल ने मुनिराज का पड़गाहन किया। चर्या के बाद कुछ दूर बाल्यकाल का मित्र होने के कारण उनको भेजने के लिए पुष्पडाल गए। मैं वापिस लौटता हूँ इस प्रकार वे मुनिराज को क्षीरवृक्ष दिखाते हैं। मुनि ने कुछ भी नहीं कहा। पुनः आगे चलकर मुनि की वंदना करते हैं तो भी मुनि ने कुछ भी नहीं कहा। मुनि पुष्पडाल को हाथ पकड़कर के एकांत में स्थान में ले आये। वहाँ पर वैराग्य का मूल विशिष्ट धर्म का उपदेश सुनकर पुष्पडाल के मन में श्मशान वैराग्य उत्पन्न हो गया, जिससे उसने तपःकर्म ग्रहण कर लिया और उसे तप ग्रहण करा दिया गया। तप को धारण करते हुए भी वह अपनी स्त्री का स्मरण करते रहते हैं।

बारसवरिसपज्जंतं सो पुप्फडालो वारिसेणमुणिणा सह विहरिय वड्ढमाणसामिसमवसरणे समागदो। तत्थ तित्थयरदेवस्स कित्तीए देवेहिं गाणं गीदं जं खलु वड्ढमाणसामिणो पुढवीए य संबंधे जादं। तं जहा–

मइलकुचेली दुम्मणी णाहेँ पवसियएण।
कह जीवेसइ धणियधर डज्झंते हियएण॥

पुप्फडालेण तं गीदं णियवणिदाए सह जुंजिदं तेण तव्विसए उक्कंठिदो जादो। वारिसेणो तस्स मणट्ठिदिं जाणेदूणं ट्ठिदिकरणोवायं चिंतेदि। उवायं चिंतिय तेण णियघरे सो णेइज्जईअ। माअरचेलिणी विचारेइ– हंदि! 'वारिसेणो किं चारित्तेण खलिदो।' तदो परिक्खणट्ठं सा दोण्णि आसणाणि ठवेदि एक्कं सरागं अण्णं च वीयरागं। वारिसेणो वीयरायासणे संठविय बोल्लेदि– 'ममाणं अंदेडरं कोकिदव्वं।' तक्काले चेलिणी णाणविहाभरणेहि सज्जिदाओ बत्तीसकंतकंताओ कोक्किय समक्खं समुट्ठाइत्था। तदणंतरं वारिसेणो कहेदि– भो पुप्फडाल! इमं इत्थिसमूहं मे जुवरायपदं च तुमं गिहसु। एवं सुणिय पुप्फडालो अच्चंतं लज्जिदो जादो पच्छा उक्कट्ठवेरग्गभरेण परमट्ठतवम्मि ट्ठिदो हूओ।

❑ ❑ ❑

वट्टदि सयं णिरीहो मोक्खपहे खलु पाट्टयदि अण्णे।
सगपरतारणतरणी ण हि अण्णो गुरुसमो बंधू॥

पारसमणी दु लोहं कुणदि सुवण्णं हु फासणे जादे।
सणियं सणियं य गुरू अप्पसमो कुणदि सिस्साणं॥
—अनासक्तयोगी २/२०-२१

बारह वर्ष पर्यंत तक वह पुष्पडाल वारिषेण मुनि के साथ विहार करते हुए वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में आते हैं, वहाँ तीर्थंकर प्रभु की कीर्ति में देवों के द्वारा गाना गाया जा रहा था। वह गीत वर्द्धमान स्वामी और पृथ्वी के सम्बन्ध में था, उसका भाव इस प्रकार से था–'जब पति परदेश प्रवास को जाता है तब स्त्री मैली-कुचैली खिन्न मन रहती है, पर जब वह घर छोड़कर ही चल देता है तब वह किस प्रकार जीवित रहती है।'

पुष्पडाल ने इस गीत को सुनकर के इस गीत के भाव को अपनी वनिता के साथ जोड़ लिया, जिससे वह उसके विषय में उत्कण्ठित हो गया। वारिषेण ने पुष्पडाल की मन:स्थिति को जानकर के पुष्पडाल के स्थितिकरण का चिंतन किया। उपाय सोचकर के वारिषेण अपने घर में उसको ले गये। माता चेलिनी ने विचार किया कि क्या वारिषेण चारित्र से स्खलित हो गया है? परीक्षा करने के लिए माँ ने दो आसन स्थापित किये। एक सराग आसन, एक वीतराग आसन। वारिषेण वीतराग आसन पर बैठकर के कहते हैं–मेरे अंत:पुर को बुलाया जाये। तत्काल चेलिनी ने अनेक प्रकार के आभरणों से सजी हुईं बत्तीस सुंदर स्त्रियों को बुलाकर के समक्ष खड़ा कर दिया। तदनन्तर वारिषेण ने कहा–हे पुष्पडाल! यह स्त्री समूह और मेरे युवराज पद को तुम ग्रहण कर लो। इस प्रकार सुनकर के पुष्पडाल अत्यंत लज्जित हुआ। बाद में उत्कृष्ट वैराग्य के भाव से परमार्थ तप में वह स्थित हो गया।

❑ ❑ ❑

जो स्वयं निरीह होकर रहता है और मोक्षपथ पर अन्यों को प्रवर्तन कराते हैं
ऐसे स्व-पर को तारने वाली नौका गुरु के समान अन्य कोई बंधू नहीं है॥२०॥

पारसमणी तो लोहे को स्पर्श करने पर स्वर्ण बनाती है
किन्तु गुरु धीरे-धीरे शिष्यों को अपने समान ही बना लेते हैं॥२१॥ अ.यो.

(७) विण्हुकुमारमुणिकहा

अवंतिदेसे उज्जइणीणयरे सिरिवम्मा राया रज्जं कुणित्था। तस्स बली बहप्फई पहलादो णमुई त्ति चउरो मंतिणो संति। एयस्सिं तत्थ दिव्वणाणी अकंपणाइरियो सत्तसयमुणीहि सहिदो रज्जस्स बहि उज्जाणे आगंतूण ठाइरे। आइरिएण आदिट्ठं जं रायादीणं जदा आगमणं हवे परोप्परं तेहिं सह य वत्तालावं ण कुणेज्जा अण्णहा संघस्स णासो हवे।

एत्थ राया सगधवलघरस्स उवरि चिट्ठंतो अणेयणायरियजणे करेसुं गहिदपूजासामग्गिविसेसे पासिऊण पुच्छेइ मंतिणं- एदे जणा कत्थ गच्छंति? मंतिणो भणंति- णयरस्स बहि उज्जाणे अणेया णग्गसाहवो ठंति तेसिं दंसणकरणट्ठं इमे गच्छंति। राया कहेदि- अम्हे वि तत्थ दंसणट्ठं गच्छामो। एवं भणिऊण राया मंतिसमवेदो तत्थ गदो। असेसमुणीणं पत्तेयं वंदणा राइणा कदा परंतु केणवि आसीवादो ण पदत्तो। 'अच्चंतणिप्पहा एदे साहवो' त्ति भावेण पट्ठाणसमए मंतिणो राइणं कहंति- एदे सव्वे बलीवद्दा मुक्खा य तेण छलेण मोणं गहिय चिट्ठंति। एवं वत्तालावेण मंतीहि सह गच्छंतो राया अग्ग एगं सुदसायरमुणिं देक्खइ। 'तेसु एगो मुक्खो उदरं भरिय समक्खं आगच्छइ' त्ति मंतिणो भणंति। मुणिणा सह ते वादविवादेण कलहंति। चरियागदो मुणी गुरुआणं अजाणंतो वादेण मंतिणो पराभवंति। मुणिवरेण सव्वसमायारो गुरुसमक्खं णिवेदिदो। आइरियेण वुत्तं- तुज्झ कारणेण सव्वसंघे उवसग्गो हवेज्ज तेण अज्ज वादट्ठाणे गंतूण रत्तीए काउसग्गो कादव्वो। गुरुणो आणाए सो मुणी तत्थ काउसग्गेण ठादि। ते पराभूदा मंतिणो लज्जाए कोहेण य भरिया रत्तीए संघघादणट्ठं णिग्गदा। मज्झपहे काउसग्गेण ट्ठिदं मुणिं पासिऊण वियारंति- जेण मज्झाण पराभवो कदो तस्स घादो खलु कादव्वो अवस्सं। ते चउरो जुगवं घादिउं खंगेण वारं कुव्वंति। तक्काले णयरदेवदाए आसणं कंपिदं जेण तदवत्थाए ते कीलिदा य। पादो सव्वजणेहि जदा ते कीलिदा दिट्ठा तदा सव्वत्थ कोलाहलो जादो। पच्छा ते मोइदा। राया तेसिं दुट्ठचेट्ठियं अवगमिय गद्दभारोहणेण णयरादो णिग्घादेइ।

अह कुरुजंगलदेसस्स हत्थिणागपुरे राया महापउमो णिवसीअ। तस्स राणीए लच्छीमईए दो पुत्ता पउमो विण्हू य संति। कालंतरे राया महापउमो पउमपुत्तस्स रज्जं समप्पिय विण्हुपुत्तेण सह सुदसायरचंदणामाइरियसमीवं मुणी जादो। ते बलिपहुदीओ कालंतरे पउमरण्णो मंतिणो संजादा। तक्काले कुंभपुरस्स दुग्गे राया सिंहबलो आसि। सो दुग्गबलेण पउमरण्णो देसे काले-काले उवद्दवं कुणइ। पउमराओ उवद्दवस्स चिंताए दुब्बलो जादो। बलिणा दुब्बलस्स कारणं पुच्छिदं। राया सव्वं घडियवुत्तंतं कहेदि। तं सुणिय रायाणाए बली तत्थ गदो। सगबुद्धिमाहप्पेण दुग्गं खंडिय सिंहबलं घेप्पिय सो पडिणिवुत्तो। 'एसो एव सो सिंहबलो' त्ति भणिय पउमरायणो समप्पियो। संतुट्ठेण राइणा वुत्तं- सगवंछियवरं मग्ग। बलिणा भणियं- 'जदा मग्गिहामि तदा पदासु।'

तदणंतरं कइवयदिवसेसु अणेयणयरगामेसु विहरंतो आइरियो अकंपणो सत्तसयमुणीहि समं हत्थिणागपुरे आगच्छइ। केई दंसणट्ठं, केई उवदेससवणट्ठं, केई आसीवादगहणट्ठं, केई विसिट्ठपूयाकरणट्ठं, केई सत्तसयमुणिसमूहदंसणट्ठं, केई विसालमुणिसमूहस्स मज्झे आइरियदेवस्स विलोयणट्ठं, केई उस्सुगुत्तेण, केई जिणधम्मगुरुराएण, केई संगदिकारणेण, केई हरिसेण, केई वेज्जावच्चणिमित्तेण,

(७) विष्णुकुमार मुनिकी कथा

अवंतिदेश में उज्जयनी नगरी में राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। उनके बिल, बृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि ये चार मंत्री थे। एक बार वहाँ दिव्यज्ञानी अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों के साथ राज्य के बाहर उद्यान में आकर के ठहर गये। अकम्पनाचार्य ने आदेश दिया कि राजा आदि का आगमन हो तो परस्पर में उनके साथ कोई वार्तालाप न करे अन्यथा संघ का नाश होगा। इधर राजा अपने धवलगृह के ऊपर बैठा हुआ अनेक नागरिकजनों के हाथों में पूजा सामग्री को ग्रहण करके ले जाते हुए देखकर मंत्री को पूछता है–ये लोग कहाँ जा रहे हैं? मंत्री ने कहा–नगर के बाहर उद्यान में अनेक नग्न साधु स्थित हैं, उनके दर्शन करने के लिए ये जा रहे हैं। राजा कहता है–हम लोगों को भी वहाँ दर्शन के लि चलना है। इस प्रकार से कहकर के राजा दर्शन के लिए वहाँ पहुँचा। समस्त मुनियों के प्रत्येक की वंदना राजा के द्वारा की गई परन्तु किसी ने भी आशीर्वाद प्रदान नहीं किया। ये साधु अत्यन्त निस्पृह हैं इस भाव से प्रस्थान के समय पर राजा ने मंत्रियों को कहा। मंत्री राजा को कहते हैं–'ये सभी बलिवर्ध और मूर्ख हैं इसलिए छल से मौन ग्रहण करके बैठे हैं'। इस प्रकार के वार्तालाप से मंत्री के साथ जाते हुए राजा एक श्रुतसागर मुनि को देखते हैं। 'उनमें से एक मूर्ख उदर भरकर के समक्ष आ रहा है' इस प्रकार मंत्री कहते हैं। मुनिराज के साथ वे वाद-विवाद के द्वारा वे कलह करते हैं। चर्या से आये हुए मुनि गुरु आज्ञा को नहीं जानते हुए वाद से मंत्रियों को हरा देते हैं। मुनिराज से समस्त समाचार गुरुमहाराज के समक्ष निवेदन किया। अकम्पनाचार्य ने कहा–तुम्हारे कारण से सर्वसंघ के ऊपर उपसर्ग होगा इसलिए आज उसी वाद के स्थान पर जाकर रात्रि में कायोत्सर्ग करना चाहिए। गुरु की आज्ञा से वह मुनि वहीं पर कायोत्सर्ग से स्थित हो गये। हारे हुए वे मंत्री लज्जा और क्रोध से भरे हुए रात्रि में संघ का विनाश करने के लिए निकले। रास्ते में कायोत्सर्ग से स्थित उन मुनि को देखकर के विचार करते हैं–जिसने मेरा पराभव किया उसका घात तो अवश्य करना चाहिए। वे चारों एक साथ उन मुनिराज के घात करने के लिए तलवार से वार करते हैं। उसी समय पर नगर देवता का आसन कम्पित हुआ जिससे वे चारों उसी अवस्था में कीलित हो गये। प्रातः सभी लोगों ने जब उन लोगों को कीलित देखा तब सर्वत्र कोलाहल हो गया बाद में वे छोड़ दिये गये। राजा उनकी दुष्ट चेष्टाओं को जानकर के गधे पर बिठाकर नगर से बाहर निकाल देता है।

तदनन्तर कुरुजांगल देश के हस्तिनागपुर नगर में राजा महापद्म निवास करते थे। उनकी रानी लक्ष्मीमती के दो पुत्र पद्म और विष्णु थे। कालांतर में राजा महापद्म पद्म पुत्र के लिए राज्य समर्पित करके विष्णु पुत्र के साथ श्रुतसागरचंद्र नामक आचार्य के पास मुनि हो गये। वे बलि आदि मंत्री कालान्तर में पद्म राजा के मंत्री हो गये। उस समय पर कुंभपुर के दुर्ग में राजा सिंहबल रहता था। वह अपने दुर्ग के बल से पद्म राजा देश में समय-समय पर उपद्रव करता रहता था। पद्म राजा उपद्रव की चिंता से दुर्बल हो गये। बलि ने दुर्बलता का कारण पूछा। राजा ने समस्त घटित हुआ वृत्तांत कह दिया। उसको सुनकर राजाज्ञा से बलि सिंहबल के पास गया। अपने बुद्धि के महात्म्य से दुर्ग को खण्डित करके सिंहबल को पकड़कर के वह वापिस लौट आया। यही वह सिंहबल है इस प्रकार से कहकर के पद्म राजा को समर्पित कर दिया। संतुष्ट होकर राजा ने कहा–अपना इच्छित वर माँग लो। बलि ने कहा–जब मागूँगा तब प्रदान कर देना।

तदनन्तर कुछ दिनों के बाद में अनेक नगर और ग्रामों के बिहार करते हुए अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों के साथ

केई दाणभावेण, केई तच्चरुइवसेण, केई झाणलीणमुणीणं दंसणभावेण, केई मुणीणं संगदिकारणेण, केई पओजणेण, केई अप्पओजणेण गमणागमणं कुणंति। जेण णयरे पवणाहदसायरोव्व सव्वत्थ खोहो पसरेइ। पउमराया वि एदेसिं णग्गाणं भत्तो त्ति जाणिय मंतिणो भयं समावण्णा। तब्भएण तेसिं विणासाय पउमराइणो मंतीहिं पुव्वदत्तं वरं मग्गिदं- ममाणं सत्तदिणाणि रज्जकज्जं समप्पसु। तेसिं कुडिलाहिप्पायं अजाणंतेण राइणा रज्जकज्जपदाणेण अंतेउरे संतुट्ठेण णिवासो कदो। इदो बलिपहुदिमंतीहि आदावणगिरीए काउसग्गेण ट्ठिदाणं मुणीणं सव्वत्थ परिवेट्ठिय मण्णवे जण्णं विहिदं। अजादिजीवाणं पूइगंधकलेवर-जणिदधूमादिणा बहुभयंकरो उवसग्गो कदो। सव्वे साहवो चउव्विहाहार-परिच्चागरूवबहिसंण्णासेण रयणत्तयरक्खट्ठं देहपरिच्चागरूवब्भंतरसंण्णासेण य दुविहेण जहाट्ठिदि ठाइरे।

तदणंतरं मिहिलाणयरीए अद्धरयणीसमये सुदसायरचंदाइरियो कंपंतं सवणणक्खत्तं पासिय ओहिणाणेण जाणिय भणेइ- महामुणीणं उवरि महोवसग्गो वट्टइ। इदि सुणिऊण पुप्फदंतखुल्लएण विज्जाहरेण पुच्छियं- कहिं ठाणे केसुं मुणीसुं उवरि उवसग्गो होइ? गुरुणा वुत्तं- हत्थिणागपुरे अकंपणाइरियादिसत्तसयमुणीसु। तस्स पडियारो कधं हवे त्ति पुच्छे गुरू कहेदि- धरणिभूसणसेलस्स उवरि विकिरियारिद्धिधारगो विण्हुकुमारो मुणी महातवस्सी अत्थि। सो खलु तदुवसग्गं णिवारिउं सक्केदि। तदो खुल्लओ विज्जापहावेण मुणिसमीवं गंतूण सव्वसमायारं णिवेदेदि। 'किं खु महं पासे विकिरियारिद्धी अत्थि' त्ति णिण्णयट्ठं मुणी सगहत्थं पसारेदि तो अमुं पव्वदं पविसिय दूरं णिग्गच्छइ। तए इड्ढिणिण्णयं किच्चा सो हत्थिणागपुरं गच्छिदूण पउमराआणं भणइ- तुमए कधं मुणीसु उवसग्गो कराविज्जित्था? तुज्झ कुले इणं णिंदकज्जं पुव्वं कयावि ण केणवि कदं। पउमो कहेदि- अहं किं करेमु, मए पुव्वमेव वरं पदत्तं।

तदो विण्हुकुमारमुणिणा एगं वामणबाम्हणस्स रूवं णिम्माविदं। तम्मि ठाणे गच्छिय मणहरसद्देहि वेदपाठो उच्चारिदो। बली भणइ- किं कंखसे? बम्हणो भणइ- पादत्तयभूमिं पदाएज्ज। सव्वे हसिय कहंति- अण्णं अहियं मग्गियव्वं जं हं अहुणा राया होमि। मुहुं कहिदे वि सो तिपादभूमिं एव इच्छेदि। तेण तए करेसु संकप्पजलं गेण्हिय विहिपुव्वेण पादत्तयभूमी पदत्ता। तदा मुणिणा एगो पादो मेरुस्सुवरि णिक्खिविदो विदिओ माणुसोत्तरपव्वदे तदियो पुण देवविमाणेसु घुम्मिय बलिणो पुट्ठे णिक्खित्तो। सव्वत्थ खोहो जादो, किण्णरादिदेवेहि पसंसागीदं उच्चारिदं। बली खमं पत्थेदि। तदा बलिं बंधिय उवसग्गो णिवारिदो। ते चउरो वि मंतिणो पउमरायणो भएण विण्हुकुमारमुणिस्स अकंपणाइरियादिमुणीणं चरणेसु णिवदिय खमं मग्गंति। पच्छा ते सावगा संजादा।

❑ ❑ ❑

हस्तिनागपुर में आ गये। कितने ही लोग दर्शन करने के लिए, कितने ही लोग उपदेश श्रवण करने के लिए, कितने ही लोग आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए, कितने ही लोग विशिष्ट पूजा करने के लिए, कितने ही लोग सातसौ मुनि समूह का दर्शन करने के लिए, कितने ही लोग विशाल समूह के बीच आचार्य को देखने के लिए और कितने ही लोग उत्सुकता के साथ, कितने ही लोग धर्मगुरु के अनुराग के साथ, कितने ही लोग संगति के कारण से, कितने ही लोग हर्ष के कारण, कितने ही लोग वैयावृत्ति के भावों से, कितने ही लोग तत्त्व रुचि के कारण से, कितने ही लोग ध्यान मुनियों के दर्शन के भावना से, कितने ही लोग प्रयोजनवश और कितने ही लोग बिना प्रयोजन के गमनागमन करने लगे। जिससे नगर में वायु से आहत सागर के समान सर्वत्र क्षोभ फैल गया। पद्म राजा भी इन र्न ग्नों का भक्त है ऐसा जानकर के मंत्रियों को भय उत्पन्न हो गया। उस भय से उनका विनाश करने के लिए मंत्रियों ने पद्म राजा से पहले दिये हुए वर की माँग की–मुझे सात दिन का राज्य–काज्य दिया जावे। उनके कुटिल अभिप्राय को न जानते हुए राजा ने राज्य काज्य को प्रदान करने के साथ स्वयं अतःपुर में निवास करने चला गया। इधर बलि आदि मंत्रियों के द्वारा आतापन गिरि के ऊपर कायात्सर्ग में स्थित मुनियों को चारों ओर से घेरकर एक मण्डप में यज्ञ प्रारम्भ किया। बकरा आदि जावों के दुर्गंध क्लेवरों से उत्पन्न धुँये आदि के द्वारा बहुत भयंकर उपसर्ग हुआ। सभी साधु चारों प्रकार के आहार के परित्याग रूप बाह्य संन्यास के साथ रत्नत्रय की रक्षा करने के लिए देहपरित्याग रूप अभ्यंतर संन्यास से जैसी स्थिति में थे उसी में स्थित हो गये।

तदनन्तर मिथलानगरी में आधीरात के समय पर श्रुतसागरचन्द्र आचार्य आकाश में काँपते हुए श्रवण नक्षत्र को देखकर के अवधिज्ञान से जानकर कहते हैं–महामुनियों के ऊपर महान उपसर्ग हो रहा है। ऐसा सुनकर के विद्याधर पुष्पदंत क्षुल्लक ने पूछा–किस स्थान पर किन मुनियों के ऊपर उपसर्ग हो रहा है? मुनिराज ने कहा–हस्तिनागपुर में अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों के ऊपर। उनका प्रतिकार कैसे हो? इस प्रकार पूछने पर गुरु कहते हैं–धरणिभूषण पर्वत के ऊपर विक्रियाऋद्धि के धारी मुनि विष्णुकुमार महातपस्वी हैं, वही उस उपसर्ग का निवारण में करने में समर्थ हैं। तब क्षुल्लकजी विद्या के प्रभाव से मुनि के समीप जाकर के सभी समाचार निवेदन करते हैं। क्या मेरे पास विक्रिया ऋद्धि है? इस प्रकार का निर्णय करने के लिए मुनि अपने हाथ को फैलाते हैं तो वह हाथ पर्वत में प्रवेश करके दूर तक चला जाता है। तब अपनी ऋद्धि का निश्चय करके वह हस्निागपुर जाकर के पद्म राजा को कहते हैं–तुमने मुनियों के ऊपर यह उपसर्ग क्यों कराया है? तुम्हारे कुल में इस प्रकार का निंद्यकार्य पहले कभी भी किसी ने नहीं किया। राजा पद्म ने कहा–मैं क्या करूँ? मैंने पहले ही उसे वर प्रदान कर दिया था।

तब विष्णुकुमार मुनि एक वामन ब्राह्मण का रूप बनाते हैं और उस स्थान पर जाकर के मनोहर शब्दों से वेद का पाठ उच्चारित करते हैं। बलि कहता है–क्या चाहते हो? ब्राह्मण ने कहा–तीन पग भूमि प्रदान की जाये। सभी हँसकर के कहते हैं–अन्य अधिक माँग लो क्योंकि मैं अभी राजा हूँ। बार–बार कहने पर भी तीन पग भूमि की ही इच्छा करते हैं। तब उनके द्वारा में सकल्प जल ग्रहण कराकर के तीन पग भूमि प्रदान की जाती है। तभी मुनि ने एक पाद मेरु पर्वत पर रख दिया, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर और तीसरा पाद देव के विमानों में घूमकर बलि की पीठ पर रख दिया। सर्वत्र क्षोभ उत्पन्न हो गया। किन्नर आदि देवों के द्वारा प्रशंसा के गीत उच्चरित हुए। बलि क्षमा की प्रार्थना करने लगा। तब बलि को बाँधकर उपसर्ग का निवारण हुआ। वे चारों मंत्री भी पद्म राजा के भय से विष्णुकुमार और अकम्पनाचार्य आदि के चरणों में निवेदन करके क्षमा माँगते हैं और बाद में वे सब श्रावक बन जाते हैं। ❑ ❑ ❑

(८) वज्जकुमारमुणिकहा

हत्थिणागपुरे एगो राया बलाभिहेओ वरिवट्टइ। तस्स पुरोहिदो गरुडो सोमदत्तपुत्तेण सह णिवसीअ। असेससत्थाणि पढिदूण सो अहिच्छत्तपुरे सगमाउलस्स सुभूदिणामस्स समक्खं गंतूण कहेदि- माउल! अम्हं दुम्मुहरायणो दंसणं करावहि। गव्वेण भरिदो सुभूदी रायदंसणं ण करावेदि। तदो हठेण सो सयं रायसहाए गदो। तत्थ तेण रायणो दंसणं करिय असेससत्थाणं णिउणदा पयडीकदा। जेण पसण्णभूदो राया मंतिपदे तं संठवेदि। तं तहाविहं परिलक्खिय माउलेण जण्णदत्ताए णियपुत्तीए विवाहो तेण सह कदो।

एयसमए जदा सा जण्णदत्ता गब्भिणी जादा तदा वरिसाकाले तास आमफलं खादिउं दोहलो जादो। सव्वत्थ उज्जाणेसु आमफलं गवेसिय सोमदत्तो देक्खइ- जस्स आमरुक्खस्स अहो सुमित्ताइरियो जोगेण चिट्ठइ सो रुक्खो णाणाविहफलेहि भरिओत्थि। तेण ताओ रुक्खादो फलाणि गहिय केणचि जणेण सह घरं पेसिदाणि। सयं धम्मसवणं करिय संसारत्तो विरत्तो जादो। तवोकम्मं धरिदूण जिणागमस्स अज्झयणे अणुरज्जइ। जदा परिपक्को संभूदो तदा णाहिगिरिपव्वदे आदावणजोगेण ठिदो होदि।

इदो जण्णदत्ता सुदं जम्मेदि। पई मुणी जादो त्ति समायारं सुणिय सा सगभादरसमीवं गच्छइ। पुत्तस्स सुद्धिं जाणिय सा सगभाउरेहिं सह णाहिगिरिपव्वदे समाजादि। तत्थ आदावणजोगे ट्ठिदसोमदत्तमुणिं पेच्छिय अइकोहेण ताए सो बालो तस्स पादेसु संठिवय दुव्वयणं कहिय सयघरं णिग्गच्छइ।

तस्समये सगलहुभादरेण रज्जादो णिग्घाडिदो दिवायरदेवाहिधाणो विज्जाहरो सगित्थीए सह मुणिवंदणट्ठं समाजादि। एगागिसिसुं तत्थ पेक्खिय तं गहिय सो सगित्थिं समप्पिय तस्स णाम वज्जकुमारं धरिय चलीअ। सो वज्जकुमारो कणयणयरे विमलवाहणमाउलसमीवं सव्वविज्जाओ पढिय सणियं सणियं तरुणो होदि।

इदो गरुडवेगंगवईणं पुत्ती पवणवेगा हेमंतसेले पण्णत्तिणामविज्जं सिज्झइ। तक्काले वाउवेगेण तिक्खकंटगो आगंतूण ताअ अक्खिं विद्धो। तप्पीडाकारणेण चित्ते चंचलदा जादा। जेण विज्जासिद्धीए विग्घं होईअ। वज्जकुमारेण तहाविहकट्ठं दिट्ठूण कंटयपीडा अवहरिदा। जेण चित्तस्स थिरदा विज्जाए सिद्धी च अविलंबेण संभूदा। 'तुमे पसाएण इमिआ विज्जासिद्धी जादा तदो तुवं मे भत्ता' एवं कहिय ताए वज्जकुमारेण विवाहो कदो।

एगदिणे वज्जकुमारे दिवायरविज्जाहरं कहेदि- हे तात! सच्चं भण, हं कस्स पुत्तो होमि, तदणंतरं खु मज्झ भोयणाइसु पउत्ती हवे। तदो दिवायरदेवेण सव्वं जहा घडिदं तहा वुत्तं। तं सुणिय सगभादरेहि सह सो सगपिअरस्स दंसणं काउं महुराणयरीए दक्खिणगुहाए गच्छेदि। तत्थ दिवायरदेवो वज्जकुमारस्स पिअरं सोमदत्तं सव्वं पयासेदि। संसारस्स एवंविहासारत्तं णादूण वज्जकुमारो मुणी जादो।

(८) वज्रकुमार मुनिकी कथा

हस्तिनागपुर में बल नाम के एक राजा थे। उनके पुरोहित का नाम गरुड़ था। वह सोमदत्त पुत्र के साथ रहते थे। सोमदत्त समस्त शास्त्रों को पढ़कर के अहिछत्रपुर में अपने मामा सुभूति के समक्ष जाकर कहता है–मामजी! मुझे दुर्मुख राजा के दर्शन करा दो। गर्व से भरे सुभूति ने उसे राजा के दर्शन नहीं कराये। तब हठ से वह स्वयं राजसभा में चला गया। वहाँ उसने राजा के दर्शन करके अपनी समस्त शास्त्रों में निपुणता प्रकट कर दी जिससे राजा ने प्रसन्न होकर उसे मंत्री पद पर स्थापित कर दिया। सुभूति मामा ने उसे मंत्री पद पर देखकर अपनी यज्ञदत्ता पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

एक समय में वह यज्ञदत्त जब गर्भिणी हुई तब उसे वर्षाकाल में आम्रफल खाने का दोहला हुआ। उद्यानों में आम्रफल की खोज करके सोमदत्त ने देखा–जिस आम्रवृक्ष के नीचे सुमित्र आचार्य योग से विराजमान हैं वह वृक्ष समस्त फलों से भरा हुआ है। उसने उस वृक्ष से फलों को लेकर किसी आदमी के साथ घर पहुँचा दिया और स्वयं धर्म श्रवण करके संसार से विरक्त हो गया। तपश्चरण को धारण करके जिनागम के अध्ययन करने में लीन हो गया। जब वह मुनि परिपक्व हुये तब नाभिगिरि पर आतापन योग से स्थित हो गये।

इधर यज्ञदत्ता ने पुत्र को जन्म दिया। पति मुनि हो गया है इस प्रकार के समाचार को सुनकर के वह अपने भाई के समीप चली गई। पुत्र की शुद्धि को जानकर के वह अपने भ्राताओं के साथ नाभिगिरि पर पहुँचती है, वहाँ पर आतापन योग में स्थित सोमदत्त मुनि को देखकर के अतिक्रोध से उसने वह बालक उन मुनि के चरणों में रखकर और अनेक दुर्वचन कहकर अपने घर चली गई।

उस समय पर अपने छोटे भ्राता के द्वारा राज्य से निकाला गया दिवाकर देव नाम का विद्याधर अपनी स्त्री के साथ मुनि वंदना करने के लिए आया था। एकाकी शिशु को वहाँ देखकर के उसने ग्रहण कर लिया और उसे अपनी स्त्री को देकर उसका नाम वज्रकुमार रखकर चला गया। वह वज्रकुमार कनकनगर में विमलवाहन मामा के समीप सभी विद्याओं को पढ़कर के धीरे-धीरे तरुण हो गया।

इधर गरुणवेग और अंगवती की पुत्री पवनवेगा हेमन्तपर्वत पर प्रज्ञप्ति नाम की विद्या सिद्ध कर रही थी उस समय पर वायु के वेग से तीक्ष्ण काँटा आकर के उसकी आँख में विध गया। उस पीड़ा के कारण उसके चित्त में चंचलता हुई जिसके कारण विद्या सिद्धि में विघ्न उत्पन्न हुआ। वज्रकुमार ने उस कष्ट को देखकर उसके काँटे की पीड़ा दूर कर दी जिससे उसके चित्त की स्थिरता हो गई और उसे विद्या सिद्धि बहुत शीघ्र हो गई। तुम्हारे प्रसाद से मुझे ये विद्या सिद्ध हुई है इसलिए तुम मेरे भर्त्ता हो, इस प्रकार कहकर के उसने वज्रकुमार के साथ विवाह किया। एक दिन वज्रकुमार दिवाकर विद्याधर को कहते हैं कि–हे तात!

इदो ताव अण्णं घडदे। महुराए पूदिगंधरायणो उव्विलाराणी सम्मादिट्ठी जिणधम्मपहावणाए अणुरत्ता आसि। सा पडिवरिसं अट्ठण्हियपव्वे तिवारं जिणिंददेवस्स रहजत्ताए पहावणं करावेइ। तण्णयरे सायरदत्तसेट्ठी समुद्दत्तावणिदाअ सह णिवसीअ। तेसिं एया दरिद्दा पुत्ती जादा। कालविडंबणादो पिअरस्स मरणे जादे सा अणाहा जहा तहा जीविदं पालेइ। एगदिणे सा परगिहे णिक्खित्तभादं खाहीअ। तक्काले चरियाए पविट्ठा दो मुणिराया तं अवलोयंति। लहुमुणी जेट्ठं पुच्छइ– आ! महाकट्ठेण एआओ जीवणं। इत्थं णिसुणिय जेट्ठो बोल्लइ– एसा एदस्स णयरस्स रण्णो पट्टराणी भविस्सए। एगेण बोद्धसाहुणा एवं सुणिय वियारिदं– 'मुणिवयणं अण्णहा ण हवे।' तदो तं सगठाणे णेइ सम्मं पालेइ य।

सा एयदा जोव्वणदसाए चेत्तमासे हिंडोले खेड्डित्था। दूरा राया तं विलोइय मोहेण खिण्णो जादो। तस्स मंतीहि सा जाचिया। बोद्धभिक्खू कहेदि जदि राया मह धम्मं अंगीकरेदि तदा दास्सं, ण अण्णहा। राआणेण सव्वं अब्भुवगदं। ताए विवाहं कादूण पट्टराणीपदे सा पइट्ठाविदा।

फागुणमासस्स णंदीसरपव्वदिणेसु उव्विला रहजत्ताए सव्वपयारेण परिक्कमइ। एवं णिरिक्खऊण बुद्धभत्ताए पट्टराणीए वुत्तं– राय! अम्ह बुद्धभयवंतस्स रहो पढमं णयरे भमेदव्वो। राइणा भणियं– एवमेव होहिदि। इदो उव्विला कहेदि 'जदि मइ रहो पढमं भमेउ तदा मे भोयणे पउत्ती, ण अण्णहा।' इदि पइण्णं कादूण सा खत्तियगुहाए विराजमाणं सोमदत्ताइरियं समया आगच्छइ। तदाणिं वज्जकुमारमुणिसमीवं दिवायरदेवादओ विज्जाहरा वंदणाभत्तिकरणट्ठं आगच्छिंसु। उव्विलाइ पत्थणं सुणिय वज्जकुमारमुणिणा विज्जाहरा कहाविज्जिंसु–तुज्झेहिं उव्विलाए रहजत्ता पुव्वं करावेदव्वा। तदो विज्जाहरेहिं अण्णरहं भंजिय जिणिंदरहस्स रहजत्ता पुव्वं कारिदा। तमइसयं विलोइय सा बुद्धराणी राया अण्णजणा वा जिणिंदिधम्मस्स भत्ता जादा।

❑ ❑ ❑

सत्य कहो मैं किसका पुत्र हूँ? तदनन्तर ही मैं भोजन आदि में प्रवृत्ति करूँगा। तब दिवाकर देव ने जैसा घटित हुआ था वैसा कह दिया। उसे सुनकर के अपने भाईयों के साथ में वह अपने पिता के दर्शन करने के लिए मथुरा नगरी के दक्षिण गुफा में चले जाते हैं। वहाँ दिवाकर देव वज्रकुमार के पिता सोमदत्त को सब कुछ कह देते हैं। संसार की इस प्रकार की असारता को जानकर वज्रकुमार मुनि हो जाते हैं।

इधर एक अन्य घटना घटित होती है। मथुरा में पूतिगंध राजा की उर्विला रानी सम्यग्दृष्टि थी, वह जिनधर्म की प्रभावना में अनुरक्त थी। वह प्रतिवर्ष अष्टाह्निका पर्व में तीन बार जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा के द्वारा प्रभावना करवाती थी। उस नगर में सागरदत्त श्रेष्ठी समुद्रदत्त वनिता के साथ में निवास करते थे। उनकी एक दरिद्रा नाम की पुत्री थी। काल की विडम्बना से सागरदत्त के मर जाने पर वह अनाथ हो गई और वह जैसे-तैसे अपना जीवन चलाती थी। एक दिन वह किसी दूसरे के घर में फैंके हुए भात को खा रही थी। उसी समय पर चर्या के लिए आये हुए दो मुनिराज उसको देखते हैं। लघु मुनि ने ज्येष्ठ मुनि को पूछा-अहो! महाकष्ट से इसका जीवन चल रहा है। इस प्रकार सुनकर के ज्येष्ठ मुनिराज ने कहा-यह इस नगर के राजा की पट्टरानी होगी। एक बौद्ध साधु ने इस प्रकार से सुनकर के विचार किया कि-मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते हैं इसलिए वह उसे अपने स्थान पर ले गया और उसका समीचीन रूप से पालन किया।

वह एक बार यौवन दशा में चैत्र मास में झूले पर खेल रही थी। दूर से ही राजा ने उसको देखा और देखकर के मोह से खिन्न हो गया। उसके मंत्रियों के द्वारा उस कन्या की याचना की गई। बौद्ध भिक्षु ने कहा-यदि राजा मेरे धर्म को अंगीकार करता है तभी कन्या को दूँगा अन्यथा नहीं। राजा ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। उस कन्या के साथ विवाह करके पट्टरानी के पद पर उसे स्थापित कर दिया।

फाल्गुन मास की अष्टाह्निका में नंदीश्वरद्वीप के पर्व के दिनों में उर्विला रथयात्रा के लिए सभी प्रकार से तैयारियाँ करती है। उसकी तैयारी को देखकर के बुद्धभक्त पट्टरानी ने कहा-राजन! मेरे बुद्ध भगवान का रथ पहले नगर में भ्रमण करना चाहिए। राजा ने कहा-इसी प्रकार से ही होगा। इधर उर्विला कहती है-यदि मेरा रथ पहले भ्रमण करेगा तभी मैं भोजन में प्रवृत्ति करूँगी अन्यथा नहीं। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके वह उर्विला रानी क्षत्रिय गुफा में विराजमान सोमदत्त आचार्य के पास आई। उसी समय पर वज्रकुमार मुनि के समक्ष वंदना भक्ति करने के लिए दिवाकर देव आदि विद्याधर आये हुए थे। उर्विला की प्रार्थना सुनकर वज्रकुमार मुनि ने विद्याधरों को कहा-तुम्हारे द्वारा उर्विला की रथयात्रा को पहले कराना चाहिए। तब विद्याधरों के द्वारा अन्य रथ को तोड़कर के जिनेन्द्रदेव के रथ की रथयात्रा पहले कराई गई। उस अतिशय को देखकर के बुद्धरानी-राजा तथा अन्य लोग भी जिनेन्द्र धर्म के भक्त हो गये।

❑ ❑ ❑

(९) जमवालचंडालस्स कहा

सुरम्मदेसे पोदणपुरणयरे राया महाबलो णिविसिंसु। णंदीसरपव्वस्स अट्ठमीदिणे राइणा घोसिदं– जं रज्जे अट्ठदिवसपेज्जंतं जीवघादो ण केणवि ववहरिस्सए। राइणो एगो बलणामो सुणू आसि। सो मंसभक्खणे अणुरज्जीअ। एत्थ ण कोवि देक्खइ त्ति वियारिय उज्जाणे मेसं घादाविय पचाविय य खादित्था। णिवेण जदा मेसमरणस्स समायारो सुदो तदा सो कुद्धो होइ। केण एसो मेसो घादिदो त्ति गवेसणा कदा। तस्स उज्जाणस्स माली ताव रुक्खस्सुवरि चिट्ठइ। तेण दिट्ठं जं रायकुमारेण सो घादिदो। माली रयणीए एवं वुत्तंतं सगित्थिं कहेदि। गूढेण गुत्तचरपुरिसेण सव्वं सुणिय राइणो कण्णे कहिदं। मे आणा अम्हं सुणू वि ण मण्णेइ त्ति कुद्धेण राइणा आदिट्ठं– जं बलस्स णव खण्डा करावेदव्वा।

तदणंतरं तं बलकुमारं घादिउं चण्डालस्स घरे रायपुरिसा गदा। ते देक्खिय चण्डालो सगित्थिं भणइ– अहं एत्थ णत्थि त्ति कहेदव्वं। एवं भणिय सो घरस्स कोणे लुक्किय चेट्ठइ। जदा रायपुरिसा कोक्कंति तदा सा भणइ– सो अज्ज गामं गदो। ते पुरिसा बोल्लंति– वराय! दुब्भग! अज्ज एव गामं गदो, रायकुमारस्स घादेण संपत्तसुवण्णरयणादिलाहेण वंचिदो जादो। धणलोहेण सा इंगिदेण संकेदेदि। तेण तं घरत्तो गहिय रायसमक्खं ते णेंति। रायसमक्खं वि चंडालो भणेदि– 'अज्ज चउदसी दिवसे हं जीवघादं ण करेस्सामि।' त्ति मे संकप्पोत्थि। कदा संकप्पो गिहीदो त्ति पुच्छे सो समाह– एयदा किण्हसप्पो ममं दंसेइ। मे मरणं जादमिदि चिंतिय मसाणे सव्वे णेंति। तत्थ सव्वोसहरिद्धिधारगो एगो मुणी विराजेइ। तस्स सरीरस्स पवणेण अहं पुणो जीविदं। तदाणिं मए चउद्दसीए जीवघादाकरणणियमो गिहीदो। चंडालस्स अफासिज्जस्स वि खु वदं होदि! इदि वियारेण रुट्ठेण राइणा वुत्तं– 'बलेण सह इमं वि सिसुमारतडागे बंधिय पक्खिवेदव्वो।' रण्णो आणाए तहेव कदं। बलस्स मरणं तडागट्ठिदमच्छेहि विहिदं किंतु चंडालस्स वदमाहप्पेण जलदेवदाए रक्खा कदा। तदाणिं जलस्सुवरि गयणंगणे सिंहासणे ट्ठिदो मणिमयमंडवेण सहिदो दुंदुभिसद्देहि पूयिदो साहुकारसद्देहि पसंसिदो चंडालो सोहेदि। तस्समायारं जाणिय राइणा वि सो सम्माणिदो। फासजोग्गो एसो विसिट्ठपुरिसो त्ति घोसिदो।

❑ ❑ ❑

(९) यमपाल चाण्डाल की कथा

सुरम्य देश में पोदनपुर नगर में राजा महाबल निवास करते थे नंदीश्वरपर्व की अष्टमी के दिन राजा ने घोषणा की कि राज्य में आठ दिन तक किसी के द्वारा भी जीव का घात न किया जाये। राजा का एक बल नाम का पुत्र था वह मांस भक्षण में अनुराग करता था। यहाँ पर कोई भी नहीं देख रहा है इस प्रकार का विचार करके उद्यान में उसने एक मेष का (भैंसे का) घात करके उसको पकाकरके खा लिया। राजा ने जब मेष के मरण का समाचार सुना तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। किसने यह मेष मार दिया? इस प्रकार की गवेषणा की गई। उस उद्यान का माली उस समय पर वृक्ष के ऊपर बैठा था उसने देखा कि यह मेष राजकुमार ने मारा है। माली रात्रि में ही यह वृत्तांत अपनी स्त्री को कहता है। गूढ से गुप्तचर पुरुष ने वह वृत्तांत सुनकरके राजा से कह दिया। मेरी आज्ञा मेरा पुत्र भी नहीं मानता है इस क्रुद्ध हुए राजा ने आदेश दिया कि उस बल के नौ टुकड़े कर देना चाहिए।

तदनन्तर उस बलकुमार का घात करने के लिए चण्डाल के घर में राजपुरुष गए। उस राजपुरुष को देखकर के चण्डाल अपनी स्त्री को कहता है–'मैं यहाँ नहीं हूँ', इस प्रकार से कह देना। ऐसा कहकरके वह घर के कौने में छुपकरके बैठ गया। जब राजपुरुष उस चण्डाल को बुलाते हैं तब उसकी स्त्री कहती है–'आज वह गाँव गया है।' वे पुरुष कहते हैं–'बेचारा दुर्भागी, आज ही गाँव गया। राजकुमार के घात से प्राप्त हुए स्वर्ण-रत्न आदि के लाभ से वह वंचित हो गया। धन के लोभ से वह स्त्री इशारे से संकेत कर देती है जिससे वे राजपुरुष घर से पकड़कर के राजा के समक्ष ले जाते हैं। राजा के समक्ष भी चाण्डाल कहता है– आज चतुर्दशी का दिन है, मैं जीव का घात नहीं करूँगा। इस प्रकार का मेरा संकल्प है। तुमने कब संकल्प ग्रहण किया? इस प्रकार के पूछने पर वह कहता है–एक बार मुझको काले सर्प ने डस लिया था। मेरा मरण हो गया है इस प्रकार सोचकर के सब लोग मुझे श्मसान ले गये। वहाँ पर सर्वौषधि ऋद्धि के धारक एक मुनिराज विराजमान थे। उनके शरीर की हवा से मैं पुनः जीवित हो गया। उसी समय पर मैंने चतुर्दशी के दिन जीव घात न करने का नियम ग्रहण कर लिया था। अस्पर्श चाण्डाल के भी क्या व्रत होते हैं? इस प्रकार का विचार करके रुष्ट हुए राजा ने कहा– बल के साथ इसको भी बाँधकर शिशुमार तालाब में फेंक दो। राजा की आज्ञा से वैसा ही किया गया। बल का मरण उस तालाब में स्थित मत्स्यों के द्वारा हो गया किन्तु चाण्डाल की व्रत की महिमा से जल देवताओं ने रक्षा की। उसी समय पर जल के ऊपर आकाश में सिंहासन पर स्थित होता हुआ, मणिमय मण्डप से सहित, दुंदुभि शब्दों से पूजित हुआ, साधुकार-साधुकार इस प्रकार के शब्दों से प्रशंसित होता हुआ वह चाण्डाल शोभा को प्राप्त होता है। उसके समाचार को जानकर के राजा ने भी उसको सम्मानित किया और यह स्पर्श के योग्य विशिष्ट पुरुष है, इस प्रकार से घोषित कर दिया।

❑ ❑ ❑

(१०) धणदेवकहा

जंबूदीवे पुव्वविदेहखेत्तस्स पुक्खलावईदेसे पुंडरीकिणी णयरी अत्थि। तत्थ जिणदेवो धणदेवो य दो अप्पधणियवणिजा णिवसित्था। तेसु धणदेवो सच्चवादी आसि। एयस्सिं तेहिं परोप्परं संकप्पियं वयणमेत्तेण जं- वावारे जो लाहो होज्ज तस्स अद्धं अद्धं कादूण विदरिस्सामो। ते धणस्स अज्जणट्ठं दूरदेसं गदा। धणं अज्जिय ते पुंडरीकिणीणयरं पडिणिवत्तंति। जिणदेवो धणदेवाय लाहस्स अद्धभागं ण पयच्छेइ। जहावसरं किंचि देदि। सणियं सणियं कलहो परोप्परं संजादो। तस्स णाओ पढमं दु कुडुंबिजिणेहि कदो पच्छा महाजणेहि। समाहाणस्स अभावे रायसमक्खं कलहो णीदो। परपुरिससक्खियं विणा ववहारसंकप्पादो तेसु मज्झे को वि ण जाणइ जं किं सच्चं? जिणदेवो रायसमक्खं वि कहेदि अद्धद्धस्स णियमवयणं मए ण कदं। धणदेवो भणेइ- एवंविहवयणं सपहेण दोहिं कदं। राया जदा णायं काउं ण सक्केइ तदा दिव्वणाएण णिण्णेइ। सो घोसेदि- हत्थाणं उवरि पज्जलिदइंगालं ठवेज्जा। तहाविहं विहिदं। धणदेवस्स करा तेण विहाणेण ण पज्जलिदा किंतु जिणदेवस्स पज्जलिदा। धणदेवो णिद्दोसो त्ति सव्वेहि घोसिदं। तदणंतरं राइणा सव्वधणं धणदेवस्स पदत्तं। सव्वेहि पूयासक्कारसम्माणसुहं धणदेवेण पत्तं तेण सदा सच्चं भणिदव्वं।

❑ ❑ ❑

बाले सिक्खाकाले मादापिदरा य दिक्खिदे गुरवो।
धम्मो परलोये खलु सदा सहाया य मित्ताणि॥
—अनासक्तयोगी ३/२

(१०) धनदेव की कथा

जम्बुद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश में एक पुण्डरीकडी नाम की नगरी है वहाँ जिनदेव और धनदेव ये दो अल्प धन वाले व्यापारी निवास करते थे। उनमें धनदेव सत्यवादी था। एक बार उन दोनों ने आपस में वचन मात्र से ही संकल्प कर लिया कि व्यापार में जो लाभ होगा उसका आधा-आधा करके हम वितरित कर लेंगे। उस धन को अर्जित करने के लिए वे दोनों दूर देश गए। धन अर्जित करके वे पुण्डरीकडी नगर में वापस लौट आते हैं। जिनदेव धनदेव के लिए लाभ का आधा भाग नहीं देता यथा अवसर थोड़ा सा दे देता है। धीरे-धीरे आपस में कलह होने लगा। उसका न्याय पहले तो कुटुम्बी जनों द्वारा किया गया पश्चात् महाजनों के द्वारा किया गया। समाधान के अभाव में वह झगड़ा राजा के पास ले जाया गया। पर पुरुष के साक्षी के बिना व्यवहार से ही संकल्प होने से उन दोनों के बीच में कोई भी नहीं जानता था कि सही बात क्या है? जिनदेव राजा के समक्ष भी कहता है कि आधा-आधा करने का नियमरूप वचन मैंने नहीं किया था। धनदेव कहता है कि इस प्रकार के वचन शपथ के साथ दोनों ने ही किए थे। राजा जब न्याय करने के लिए समर्थ नहीं होता है तब दिव्य न्याय से निर्णय करने की सोचता है। वह घोषणा करता है– हाथों के ऊपर जलते हुए अंगारों को रखा जाए, उसी प्रकार से किया गया। धनदेव के हाथ उस विधान से प्रज्वलित नहीं हुए, किंतु जिनदेव के हाथ प्रज्वलित हो गए अर्थात् जल गए। धनदेव निर्दोष है इस प्रकार सभी ने घोषित किया। तदनन्तर राजा के द्वारा सभी धन धनदेव को दे दिया गया। सभी के द्वारा पूजा, सत्कार और सम्मान सुख को धनदेव ने प्राप्त किया। इसलिए सदा सत्य ही कहना चाहिए।

❑ ❑ ❑

बालपन में, शिक्षाकाल में माता-पिता सहायक होते हैं,
दीक्षित होने पर गुरु सहायक होते हैं,
धर्म परलोक में सहायक होता है
किन्तु मित्र सदा सहायक होते हैं॥२॥ अ.यो.

(११) णीलीकहा

लाडदेसस्स भिगुकच्छणयरे राया वसुपालो णिविसिंसु। तत्थेव एगो जिणदत्तसेट्ठो वि सगित्थीए जिणदत्ताए सह णीलीणामपुत्तिं पालेइ। सा खलु अच्चंतरूववई गुणेहि सोहिदा आसि। एगो अण्णो वि सेट्ठो समुद्ददत्तणामा सगजायाए सागरदत्ताए सह सागरदत्तणामसुणुं पोसेइ। एयदा महापूयाए अवसरे जिणमंदिरे सयलाभूसणेहि सज्जिदा णीली सागरदत्तेण दिट्ठा– अहो किं णु एसा सग्गकण्णा! ताहिं आसत्तो सो चिंतेइ– इमं कधं पावेज्ज, ताए चिंताए सो दुब्बलो होइ। तस्स दुब्बलदाए कारणं जदा पिउ समुद्ददत्तो सुणेदि तदा कहेदि हे पुत्त! जेण्हादो अण्णं कं वि तं जिणदत्तो विवाहट्ठं ण देदि। तदणंतरं कालंतरे कवडेण ते दोण्णि पिउपुत्ता जेण्हा जादा। णीली परिणीदा। विवाहाणंतरे ते पुणो बुद्धभत्ता संजादा। तेहि णीलीवहू पिअरस्स गिहं गच्छिउं णिसिद्धं। वंचिओ जिणदत्तो 'मे धूआ मुआ' इदि चिंतिय संतुट्ठो। पइप्पिया णीली जिणधम्मं पालंती पुहगिहे पइणा सह णिवसेइ। समुद्ददत्तस्स अइपयासेण वि णीली बुद्धधम्मे अणुरत्ता ण जादा। णणंदाए कोहवसेण परपुरिसाणुराइणी णीली त्ति दोसो दिण्णो। तद्दोसेण दुहिदा णीली जिणिंददेवस्स चरणमूले काउसग्गेण ट्ठिदा होदि जं– 'एदस्स दोसस्स णिवारणं हवे तदा किल मे भोयणपाणे पउत्ती होहिदि।' णयरदेवदाए रत्तीए कहिदं– हे सीलवंति! एवं पाणच्चागं मा कुणह। इत्थं कहिय देवदा राइणो सुमणं देदि जं णयरस्स मुक्खद्दाराणि कीलिदाणि होंति ताणि पइवदाए सीलवंतिवणिदाए वामपादफासेण उम्मुद्दियाणि होहिइरे। पादो तहा दिट्ठूण राया सुमिणाणुसारेण 'सव्वाओ इत्थीओ वामपादेण णयरद्दाराणि फुसंतु' त्ति घोसावेइ। सव्वाहिं तदा कदं किंतु पहाणद्दाराणि ण उम्मुद्दिदाणि। अंते णीली परप्पओगेण तत्थ णीदा। ताअ चरणफासेण द्दाराणि णिक्कीलिदाणि होंति। तदा णिद्दोसा णीली त्ति सव्वेहि अब्भुवगदा। एवं सीलपहावो णादव्वो।

❑ ❑ ❑

मणाणुगूलं परिट्ठिदिभवणं खलु भग्गं।
—अनासक्तयोगी

(११) नीली की कथा

लाट देश के भृगुकच्छ नगर में राजा वसुपाल निवास करते थे। वही पर एक जिनदत्त नाम का सेठ अपनी स्त्री जिनदत्ता के साथ नीली नाम की पुत्री का पालन करता था। वह नीली अत्यंत रूपवती व गुणों से शोभित थी। एक अन्य भी सेठ समुद्रदत्त नाम का अपनी पत्नी सागरदत्ता के साथ सागरदत्त नाम के पुत्र का पोषण करता था। एकबार महा पूजा के अवसर पर जिनमंदिर में समस्त आभूषणों से सजी हुई नीली सागरदत्त ने देखी–अहो! क्या ये कोई स्वर्ग कन्या है और वह उसमें आसक्त हो गया। वह चिंतन करता है इसको कैसे प्राप्त किया जाए? उस चिंता से वह दुर्बल हो जाता है। उसकी दुर्बलता का कारण जब पिता समुद्रदत्त सुनते हैं तब कहते हैं कि हे पुत्र! जैनों के अलावा वह जिनदत्त उस पुत्री को विवाह के लिए किसी को नहीं देता है। तदनन्तर कुछ समय बाद कपट से वे दोनों पिता, पुत्र जैन हो जाते हैं। कालान्तर में नीली का विवाह हो जाता है। विवाह के बाद में वे पुनः बुद्ध भक्त हो जाते हैं। उन पिता–पुत्र के द्वारा नीली बहू को अपने पिता के घर जाने के लिए रोक दिया गया। ठगा गया जिनदत्त, मेरी पुत्री मर गई है इस प्रकार सोचकर के बुद्ध संतुष्ट हो गया। पति प्रिया नीली जिनधर्म का पालन करती हुई पृथक् घर में पति के साथ निवास करने लगी। समुद्रदत्त के अति प्रयास से भी नीली बुद्ध धर्म में अनुरक्त नहीं हुई। ननद ने क्रोध के कारण 'यह नीली पर पुरुष में अनुराग करने वाली है' इस प्रकार का दोष उसके ऊपर लगा दिया। उस दोष से दुखित हुई नीली जिनेन्द्रदेव के चरण मूल में कायोत्सर्ग से स्थित हो गई। 'इस दोष का निवारण जब होगा तभी मैं भोजन पान में प्रवृत्ति करूँगी'। इस प्रकार नगर देवता के द्वारा रात्रि में कहा गया– हे शीलवंती! इस प्रकार प्राण त्याग मत कर। इस प्रकार कह कर के देवता रात्रि में राजा को स्वप्न दिखाता है कि– नगर के मुख्य द्वार कीलित है उनको कोई पतिव्रता शीलवती स्त्री जब बायें चरण से नगर के द्वारों को स्पर्श करेगी तभी वह द्वार खुलेंगे। प्रातः काल उसी प्रकार से देखकर के राजा ने स्वप्न के अनुसार 'सभी स्त्रियों के बायें चरण से द्वारों का स्पर्श कराया जाए' इस प्रकार की घोषणा करा दी। सभी के द्वारा ऐसा किया गया किंतु प्रधान द्वार नहीं खुले। अंत में नीली को वहाँ पर किसी के द्वारा ले जाया गया और उसके चरण के स्पर्श से द्वार निष्कीलित हो गए। तब 'नीली निर्दोष है' इस प्रकार से सभी ने स्वीकार किया। इस प्रकार शील का प्रभाव जानना चाहिए।

❑ ❑ ❑

मन के अनुकूल परिस्थिति का होना ही भाग्य है। अ.यो.

(१२) जयकुमारकहा

कुरुजंगलदेसे हत्थिणागपुरणयरे कुरुवंसी राया सोमप्पहो भयवंत-उसहदेवस्स काले पसिद्धो जादो। तस्स जयकुमारणामो पुत्तो अइबलवंतो भरहचक्किणो सेणावइरयणेण पदिट्ठिदो भवीअ। सो अइपुण्णवंतो वि परिग्गहपरिमाणवदं धरिय णियवणिदाए सुलोयणाए एव संतुट्ठो। एक्कसियं ते कइलासपव्वदे भरहचक्कवट्टिणा पइट्ठाविदेसु जिणालएसु वंदणाभत्तिकरणट्ठं गदा। तक्काले सोहम्मिंदेण सग्गे जयकुमारस्स परिग्गहपरिमाणवदं पसंसियं। तस्स परिक्खाकारणेण रइप्पहो देवो समागदो। तेण दिव्वकण्णारूवं धरिय चउहिं वणिदाहिं सह तस्समीवं गंतूण कहेदि- सुलोयणा-सयंवरसमए जेण तुमए सह जुद्धं कदं तस्स णमिविज्जाहररण्णो इमाओ चउरो राणीओ अच्चंतरूववईओ णवजोव्वणाओ सयलविज्जासु पारगाओ णियसामिणो विरत्तचित्ताओ तुं कंखंति। इणं सुणिय जयकुमारो भणइ- हे सुंदरि! परइत्थी मे मायासमाणा। तदो देवित्थीहिं जयकुमारस्सुवरि बहुउवसग्गो विहिदो। तहावि तस्स चित्तं वियलियं ण जादं। रइप्पहो देवो सगमायं उवसंहरिय सव्वो समायारो जहा घडिदो तहा बोल्लेदि। तस्स पसंसणं कादूण वत्थाभूसणेहि पूयं करिय य सो सग्गं गदो।

❑ ❑ ❑

सावयजणस्स धम्मो सदारसंतोसेक्क पदिलाहो य।
भणिदो वरो संजमो पुज्जो सो देवमणुजेहिं॥
—अनासक्तयोगी १/६

(१२) जयकुमार की कथा

कुरुजांगल देश में हस्तिनागपुर नगर में कुरुवंशी राजा सोमप्रभ भगवान ऋषभदेव के काल में प्रसिद्ध पुरुष थे। उनके जयकुमार नाम का पुत्र था जो अति बलवान और भरत चक्रवर्ती के सेनापति रत्न के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था। वह अति पुण्यवान होते हुए भी परिग्रह परिमाण व्रत को धारण करके अपनी स्त्री सुलोचना में ही संतुष्ट रहता था। एक बार वे दोनों कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा प्रतिष्ठापित जिनालयों में भक्ति करने के लिए गए। उसी समय पर सौधर्म इन्द्र ने स्वर्ग में जयकुमार के परिग्रहपरिमाणव्रत की प्रशंसा की। उसकी परीक्षा करने के लिए रतिप्रभ नाम का देव आया। उसने दिव्य कन्या का रूप धारण करके अन्य चार वनिताओं के साथ जयकुमार के समीप जाकर के कहा कि सुलोचना के स्वयंवर के समय जिसने तुम्हारे साथ युद्ध किया उस नमि विद्याधर राजा की ये चार रानियाँ हैं जो अत्यंत रूपवान, नव यौवना, सकल विद्याओं में पारंगत और अपने स्वामी से विरक्त चित्त हैं, किंतु आपकी इच्छा करती हैं। इस प्रकार से सुनकर के जयकुमार ने कहा– हे सुंदरी! परस्त्री मेरी माता के समान है। तब उस दिव्य स्त्री ने जयकुमार के ऊपर बहुत उपसर्ग किया। फिर भी जयकुमार का चित्त विचलित नहीं हुआ। रतिप्रभ देव अपनी माया का उपसंहार करके सभी समाचार जैसा घटित हुआ उसी प्रकार से जयकुमार से कह देता है। जयकुमार की प्रशंसा करके और वस्त्र, आभूषणों के द्वारा उसकी पूजा करके स्वर्ग में चला जाता है।

❑ ❑ ❑

श्रावकजन का धर्म स्वदार संतोष और
एकपति का लाभ होना उत्कृष्ट संयम कहा गया है।
वह संयम देव और मनुष्यों से पूज्य है॥६॥ अ.यो.

(१३) धणसिरिकहा

लाडदेसे भिगुकच्छणयरे राया लोयपालो णिवसित्था। तत्थेव एगो धणवालो णाम सेट्ठो सगित्थीए धणसिरीए सह जीवणयावणं कुणीअ। धणसिरी सहावेण णिड्ड्याए तप्परा कुडला आसि। ताए सुंदरीणामेण पुत्ती गुणवालणामेण एगो पुत्तो य अत्थि। जदा धणसिरीआ पुत्तजम्मो ण होईअ तदा ताए कुंडलणामसुदो पुत्तबुद्धीए पालिदो। कालंतरे धणवालो मुदो। पच्छा सा कुण्डलेण सह सहवासं काउं लग्गा। एगदा धणसिरी कुण्डलं कहेदि- अहं गुणवालं गोचारट्ठं गोखरे पेसिहामि तक्काले तुं तं हणेज्जाहि जेण अम्हे सच्छंदेण वसामो। एवं भासंतीअ मायाअ वयणं सुंदरी सुणेइ। सा णियभाअरं कहेदि- अज्ज रत्तीए माया तुमं अरण्णे गोधणेण सह पेसिस्सए तत्थ कुण्डलहत्थेण ते मरणं होज्ज अदो सावधाणेण चिट्ठसु।

धणसिरी रत्तीए अंतिमपहरे गुणवालं कोक्किय कहेदि- पुत्त! अज्ज कुण्डलस्स आरोग्गं णत्थि तेण गोधणं गहिय तुमं णेहि। गुणवालो गोधणं गहिय अरण्णे गदो। तत्थ एयं कट्ठं वत्थेण आवरिय सयं लुक्केइ। कुण्डलेण गंतूण 'एत्थ गुणवालोत्थि' त्ति मुणिय आवरियकट्ठे पहारो कदो। तक्काले गुणवालेण वि तलवारेण सो हदो। घरम्मि आगदं गुणवालं धणसिरी पुच्छेइ- कुण्डलो कत्थ गदो। गुणवालो भणइ- इणमो तलवारो कुण्डलं जाणेइ। तदणंतरं लोहिदलित्तबाहुं पस्सिय धणसिरी तेणेव तलवारेण गुणवालं घादेदि। भादरस्स मरणं पेक्खिय सुंदरी मूसलेण जणणीं पीडेदि। तदाणिं कोलाहलेण कोदवाला समागदा। ते धणसिरिं गहिय रायणो समक्खं णेंति। राइणा गद्दभारोहणकण्णणासाकत्तणादिदण्डेण दण्डिदा। तेण मरणं कादूण दुग्गदिं पत्ता सा।

❑ ❑ ❑

धम्मस्स मूलं खु दया-पवुत्ती, स धम्मिगो जो सु दयाहिदत्थो।
सव्वेसु तित्थेसु सुधम्मदाणे, विणा दयं सव्वणिरत्थयं तं॥
—अनासक्तयोगी २/७

(१३) धनश्री की कथा

लाट देश के भृगुकच्छ नगर में राजा लोकपाल निवास करते था। वहाँ एक धनपाल नाम के सेठ था जो अपनी स्त्री धनश्री के साथ जीवनयापन करता था। धनश्री स्वभाव से ही निर्दयता के साथ तत्पर रहती हुई कुटिल थी। उसने सुंदरी नाम की पुत्री और गुणपाल नाम के एक पुत्र को बड़ा किया। जब धनश्री के पुत्र का जन्म नहीं हुआ था तब उसने एक कुण्डल नाम के पुत्र का पुत्र की तरह से पालन किया था। कालान्तर में धनपाल का मरण हो गया बाद में वह कुण्डल के साथ सहवास करने लगी। एक बार धनश्री ने कुण्डल से कहा- मैं गुणपाल को गाय चराने के लिए गोखुर में भेज देती हूँ। उस समय पर तुम उसको मार देना जिससे कि हम स्वच्छंदता से रहेंगे। इस प्रकार माता के कहे गए वचनों को सुंदरी ने सुन लिया। वह अपने भाई से कहती है- आज रात में माँ तुम्हें अरण्य में गोधन के साथ भेजेगी। वहाँ पर कुण्डल के हाथों से तुम्हारा मरण होगा इसलिए सावधान रहना।

धनश्री रात्रि के अंतिम प्रहर में गुणपाल को बुलाकर कहती है- पुत्र! आज कुण्डल को आरोग्य नहीं है, इसलिए गोधन को लेकर के तुम चले जाओ। गुणपाल गोधन को लेकर के अरण्य में चला गया। वहाँ पर एक काष्ठ को वस्त्रों से ढाककर के वह स्वयं छुपकर के बैठ गया। कुण्डल ने जाकर के यह गुणपाल है, ऐसा समझकर के उस ढके हुए काष्ठ पर प्रहार किया। उसी समय पर गुणपाल ने उसे तलवार से मार दिया। घर में जाकर के गुणपाल को धनश्री ने पूछा- कुण्डल कहाँ गया? गुणपाल कहता है कि यह तलवार कुण्डल को जानती है। तदनन्तर रक्त रंजित भुजाओं को देखकर के धनश्री उसी तलवार से गुणपाल का घात कर देती है। भ्राता के मरण को देखकर के सुंदरी मुसल से माँ को मारती है। उसी समय पर कोलाहल होने से कोट्टपाल आ गए। वे धनश्री को पकड़कर के राजा के समक्ष ले जाते हैं। राजा ने उसे गधे पर चढ़ाकर कान नाक आदि के कर्तन रूप दण्ड से दण्डित किया जिससे वह मरण करके दुर्गति को प्राप्त हुई। ❑ ❑ ❑

धर्म का मूल दया में प्रवृत्ति करना है।
वह धार्मिक है जो दया हृदय वाला है।
सभी तीर्थ में जाना और धर्म के लिए दान देना
यह सब कुछ बिना दया के निरर्थक है॥७॥ अ.यो.

(१४) सच्चघोसकहा

जंबूदीवे भरहखेत्ते सिंहपुरणयरे राया सिंहसेणो रामदत्ताराणीए सह वट्टीअ। तस्स सिरिभूईणामेण एगो पुरोहिदो आसि। सो खलु णियजण्होववीदे लहुकडारिं बंधिय घुम्मेदि कहेदि य- जदि हं असच्चं भणेमु तो एदेण णियजिव्हं छेदिस्सामि। तस्स कवडेण तस्स अवरणामो सच्चघोसो पचलेदि। णायरिया विस्सासेण तस्समीवं धणं ठवंति। सो ठविदधणस्स किंचिभागं गिण्हिय सेसं पडिदेदि। को वि राइणं सूचेदि तो राया ण तव्विसए चिंतेदि। एगसमए पउमखंडणयरेण समुद्ददत्तो सेट्ठो आगच्छइ। सो सच्चघोसं समया पंच बहुमुल्लरयणाणि संठविय धणस्स अज्जणट्ठं अण्णणयरे गदो। धणज्जणं करिय पडिणिउत्तिकाले जलयाणं फिट्टदि। जेण केण वि पयारेण समुद्दं उत्तरिय सिंहपुरे सच्चघोससमीवं आगदो। रंको होदूण पुरं आगच्छइ त्ति चिंतिय सच्चघोसो समीवे ट्ठिदजणे भणइ- एसो आगच्छमाणो पुरिसो जलयाणफिट्टणेण विक्खित्तो जादो तेण एत्थ आगंतूण मणिं मग्गेहिइ। सेट्ठो पुरोहिदसमीवं पणमिय कहेदि- 'हे सच्चघोसपुरोहिद! मए जाणि रयणाणि तुमं समीवं णिक्खिदाणि ताणि किवाए पदेधि। जलयाणविणट्ठेण मम उवरि संगडो समागदो।' तस्स वयणं सुणिदूण सच्चघोसो णियडट्ठिदेसु जणेसु मज्झे अइवीसासेण कहेदि- पेक्ख! मए जं पुव्वं कहिदं तं सच्चं जादं। एसो विक्खित्तो जादो। तेण सव्वे मेलिदूण तं तट्ठाणादो बाहिर णिग्गाघडंति। सव्वे 'विक्खित्तो विक्खित्तो' त्ति कहिदुं पारभंति। 'सच्चघोसेण मे पंचरयणाणि गिहिदाणि' त्ति रूवंतो णयरे घुम्मइ। रायभवणसमीवं एगरुक्खस्सुवरि चढिय पडिदिणं रयणीए रूवंतो सो तहेव णिरंतरं भणइ। एवं भणंतस्स छ मासा णिग्गदा।

एयदिणे तस्स रोदणं सुणिय रामदत्ताराणी णिवं सिंहसेणं कहेदि- देव! एसो पुरिसो विक्खित्तो णत्थि जदो सदा सया एक्कसरिसं भासेदि। राया कहेदि- तो किं सच्चघोसो चोरोत्थि। राणी भणइ- संभावणा अत्थि। राया आदिसदि- तो तुमं परिक्खेसु। आणं पाविय राणी एगदिणं सच्चघोसं णियसमीवं ठविय पियं भासेदि। 'अज्ज धूदकीडा कादव्वा' एवं कहिय राइणो सीकदिं वि राणी पावेदि। तदणंतरं धूदकीडा पारद्धा। रामदत्ता णिउणमइं दासीं कहेदि- तुमं सच्चघोसस्स घरं गंतूण बाम्हणीं सूचसु- पुरोहिदो राणीसमीवं धूदं कीडेदि। तेण तस्स विक्खित्तस्स रयणाणं मग्गट्ठं पेसिदा हं। दासी तत्थ गंतूण रयणाणि मग्गेदि किंतु बाम्हणीए ण दिण्णाणि जदो पुव्वमेव सच्चघोसेण कस्स वि रयणपदाणट्ठं णिसिद्धं। दासी राणीअ कण्णे कहेदि- सा रयणाणि ण देदि। राणीए पुरोहिदस्स मुद्दा विजिदा। तं पदाय दासीं राणी कहेदि पुणो वि तुमए गंतव्वं विस्सासट्ठं अंगुलीयं इणं देक्खाविज्जदु।

(१४) सत्यघोष की कथा

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुर नगर में राजा सिंहसेन रामदत्ता रानी के साथ रहते थे। उनके श्रीभूति नाम से एक पुरोहित था। वह पुरोहित अपने यज्ञोपवीत (जनेऊ) में छोटी कटारी बाँधकर के घूमा करता था और कहता था कि यदि मैं असत्य बोलूँ तो इससे मैं अपनी जिह्वा को छेद लूँगा। उसके कपट से उसका दूसरा नाम सत्यघोष प्रचलित हो गया। नगर के लोग विश्वास के साथ उसके समीप धन को रख देते थे। वह उस रखे हुए धन का कुछ भाग ग्रहण करके शेषभाग को प्रदान कर देता था। कोई भी राजा को सूचना देता तो राजा भी उसके विषय की चिंता नहीं करता था। एक समय की बात है कि पद्मखण्ड नगर में एक समुद्रदत्त नाम का सेठ आया। वह सत्यघोष के पास पाँच बहुमूल्य रत्न रख कर के धन का अर्जन करने के लिए अन्य नगर में चला गया। धन अर्जन करके वापस लौटते समय उसका जलयान छूट गया। जिस किसी भी प्रकार से समुद्र को पार करके वह सिंहपुर में सत्यघोष के समीप आया। 'रंक होकर के नगर में प्रवेश किया' इस तरह विचार करके सत्यघोष समीप में स्थित लोगों को कहता है कि यह आने वाला पुरुष जहाज के छूट जाने से विक्षिप्त हो गया है। इसलिए यहाँ आकर के मणि को माँगेगा। सेठ पुरोहित के समीप प्रणाम करके कहता है- हे सत्यघोष पुरोहित! मैंने जो रत्न तुम्हारे समीप रखे थे, वे कृपा करके मुझे प्रदान कर दो। जलयान के नष्ट हो जाने से मेरे ऊपर संकट आ गया है। उसके वचनों को सुनकर सत्यघोष अपने पास में बैठे हुए लोगों में अति विश्वास से कहता है- देखो मैंने जो पहले कहा था वह सत्य हुआ। वह विक्षिप्त हो गया है। इसलिए सब मिलकर के उसको उस स्थान से बाहर निकाल देते हैं। सभी पागल-पागल इस प्रकार से कहना प्रारंभ कर देते हैं। सत्यघोष ने मेरे पाँच रत्न रख लिए है इस प्रकार वह रोता हुआ नगर में घूमने लगा। राज भवन के समीप एक वृक्ष के ऊपर चढ़कर प्रतिदिन रात्रि में रोता हुआ वह हमेशा उसी प्रकार से कहता रहता था। उस सेठ के छः महीने व्यतीत हो गए।

एक दिन उसके रोने को सुनकर के रामदत्ता रानी राजा सिंहसेन को कहती है कि हे देव! यह पुरुष पागल नहीं है क्योंकि सदैव एक जैसा बोलता रहता है तो राजा ने कहा- क्या सत्यघोष चोर है? रानी कहती है-संभावना है। राजा कहता है- तो तुम उसकी परीक्षा करो। आज्ञा प्राप्त करके रानी एक दिन सत्यघोष को अपने समीप में बैठाकर के प्रिय वचनों से कहती है- आज द्यूत क्रीड़ा करनी चाहिए। इस प्रकार कहकर के राजा की स्वीकृति को रानी ने प्राप्त कर लिया। तदनन्तर द्यूत क्रीड़ा प्रारंभ हुई। रामदत्ता निपुणमती दासी को कहती है कि तुम सत्यघोष के घर जाकर ब्राह्मणी को सूचना दो कि पुरोहित रानी के समीप जुआ खेल रहा है। उन्होंने इसलिए उस पागल के रत्नों को माँगने के लिए मुझे भेजा है। दासी वहाँ जाकर रत्नों को माँगती है किंतु ब्राह्मणी ने वे रत्न नहीं दिए क्योंकि पहले ही सत्यघोष ने कहा था कि किसी को भी वह रत्न प्रदान नहीं करना। दासी रानी के कान में आकर कहती है वह ब्राह्मणी रत्न नहीं देती है। रानी ने पुरोहित की मुद्रा को जीत लिया उसको प्रदान करके दासी को रानी ने कहा- पुनः तुम्हें जाना चाहिए और उसे विश्वास दिलाने के लिए इस अंगुठी को उसे दिखा देना चाहिए। दासी उसके

दासी तग्घरं गदा तो वि बाम्हणीए रयणाइं ण दिण्णाइं। पुणो ताव राणीए पुरोहिदस्स कडारिसहिदजण्होववीदं जिदं। णिउणमई तं गहिय पुणो तग्गिहं गंतूण तहा कहेदि। तं देक्खिय आसासंती सा बाम्हणी चिंतेदि– 'जदि ण हु दामि तो सामी रूसिहिदे।' तेण भयकारणेण ताए रयणाणि दिण्णाणि। णिउणमई ताणि राणीअ हत्थे समप्पेदि। राणी राइणं दिक्खावेदि। राया ताणि रयणाणि बहुसु अण्णेसु रयणेसु मेलाविय तं विक्खित्तं कहेदि– सगरयणाणि परिलक्खिय घेप्पसु। सो वि णियरयणाणि एव पेक्खिय लेइ। तदा तेहि– 'एसो खलु ण विक्खित्तो' किंतु वणियपुत्तोत्थि' त्ति अब्भुवगदं।

तदणंतरं राइणा सच्चघोसो पुट्ठो किं तुमए इदं कज्जं कदं? सो कहेदि– राय! किं इदं कज्जं जुत्तं, अजुत्तं कज्जं अहं कधं काउं सक्कामु। तस्स असच्चं जाणिय कुविदेण राइणा तदट्टुं तिण्णि दंडाइं णिद्धारिदाइं। पढमं तु सो तिथालीपमाणं गोमयं खादु। मल्लाणं तिमुक्काणि सहेदु। असेसधणं मज्झं पदाए। तेण वियारिय पढमं गोमयं खादुं पारद्धं। असमत्थे जादे सो मल्लाणं मुक्काणि सहेदि। तत्थ वि असमत्थे जादे तेण सव्वं धणं दिण्णं। एवं तिविहदण्डाणि भुंजिय मदो। तिव्वलोहकारणेण मरिय भंडागारे अगंधणजादिवंतो सप्पो हुओ। तत्थ वि मरिय दिग्घसंसारी जादो।

❑ ❑ ❑

हियए विज्जदि सल्लं दिस्सदि णियमेण मुहे पुरिसस्स।
चिट्ठदि कदा ण तेलं जलम्मि गब्भे मुणेयव्वं॥
—अनासक्तयोगी १/१०

घर में गई तो भी ब्राह्मणी ने रत्नों को नहीं दिया। पुनः रानी ने पुरोहित के कटारी सहित यज्ञोपवीत को जीत लिया। निपुणमती दासी उसको लेकर के पुनः उसके घर में जाकर के उसी प्रकार से कहती है। उसे देखकर के विश्वास को प्राप्त हुई ब्राह्मणी चिंतन करती है– यदि 'मैं नहीं दूँगी तो स्वामी नाराज हो जाऐंगे' इसलिए भय के कारण से उसने वे रत्न उसे दे दिए। निपुणमती उन रत्नों को रानी के हाथ में समर्पित कर देती है। रानी राजा को दिखाती है। राजा उन रत्नों को बहुत से अन्य रत्नों में मिलाकर के उस पागल को कहता है– अपने रत्न पहचानकर के ग्रहण कर लो। वह पागल भी अपने रत्नों को ही पहचानकर के ले लेता है। तब उन राजा रानी ने समझ लिया कि ये पागल नहीं है किन्तु वणिक पुत्र है, ऐसा स्वीकार किया।

तदनन्तर राजा ने सत्यघोष को पूछा- क्या तुमने यह कार्य किया है? सत्यघोष कहता है- हे राजन्! क्या यह कार्य हमारे लिए उपयुक्त है? अयुक्त कार्य को हम कैसे कर सकते हैं? उसके असत्य को जानकर के कुपित हुए राजा ने उसके लिए तीन दण्ड निर्धारित किए। पहला दण्ड यह कि– वह तीन थाली प्रमाण गोबर खाये, दूसरा– मल्लों के मुक्कों को सहन करे और तीसरा– समस्त धन मुझे प्रदान करे। उस सत्यघोष ने विचार करके पहले गोबर खाना प्रारंभ किया, असमर्थ हो जाने पर उसने मल्लों के मुक्कों को सहन किया। उसमें भी असमर्थ हो जाने उसने सारा धन दे दिया। इस प्रकार से तीनों प्रकार के दण्डों को भोगकर के वह मरण को प्राप्त हुआ। तीव्र लोभ के कारण मरण करके वह राजा के भण्डागार (खजाने) में अगंधन जाति का सर्प हुआ और वहाँ से भी मरण करके दीर्घ संसारी हुआ।

❑ ❑ ❑

जो सल्य हृदय में विद्यमान रहती है
वह नियम से व्यक्ति के मुख पर दिखाई देती है।
सच है- जल के भीतर कभी भी तैल नहीं ठहरता है
किन्तु जल के ऊपर तैरता है, यह जानना चाहिए॥१०॥ अ.यो.

(१५) तापसकहा

वच्छदेसस्स कोसंबीणयरीए राया सिंहरहो णिवसित्था। तस्स भज्जा विजया आसि। तत्थ एगो चोरो कवडेण तावसो होऊण वसीअ। सो परभूमिं अफासंतो दिवसे पवणे दोलमाणसींगम्मि ट्ठिदो होदूण पंचग्गितवेण तवइ पुण णिसाए णयरीए लूडकज्जं करेदि। एगसमए 'णयरं लूडिदं' त्ति सुणिऊण राइणा कोट्टवालो भणिओ- रे कोट्टवाल! सत्तरत्तीए अब्भंतरे चोरं आणेहि अहवा सगसिरं।' तदणंतरं चोरं अपावंतो सो चिंताए णिमग्गो अवरण्हकाले चिट्ठित्था। तदा केणचि छुहापीडिदेण बम्हणेण भोयणं मग्गिदं। कोट्टपालेण वुत्तं- हे बाम्हण! तुमं मे अभिप्पायं ण जाणसि। इदो मज्झ पाणाणं तु संदेहो वट्टइ तुह भोयणं मग्गसि। एतं वयणं सुणिय बाम्हणो पुच्छेइ- केण कारणेण पाणसंदेहो वट्टदि? कोट्टवालेण कारणं कहिदं। कारणं सुणिय बाम्हणो पुच्छेदि- किं एत्थ को वि अच्चंतणिप्पहो पुरिसो विज्जदि। एगो विसिट्ठो तवस्सी णिवसेइ किंतु तस्स इणं कज्जं ण संभवइ। बाम्हणो भणइ- स एव खलु चोरो होहिइ जदो सो अच्चंतणिप्पहोत्थि। अस्सिं विसए मे कहाणयं सुण-

१. अम्हं बाम्हणी सयं 'महासई अहयं' इदि भणइ एवं पुण-पुण भणइ- 'अहं परपुरिसस्स सरीरं वि ण फासेमि। एवं भणंती सा णियपुत्तस्स वि णियसयलसरीरं पडेण आवरिय थणं देदि परंतु रत्तीए सा गिहस्स भिच्चेण सह कुकम्मं कुणइ।

२. एवं पासिऊण मह वेरग्गं जादं। तेण तित्थजत्ताणिमित्तं णिग्गदो हं। मग्गे हिदकारिभोयणट्ठं वंसदंडमज्झे सुवण्णसलागा गोविदा। अग्गगमणे जादे एगो बम्हचारीबालगो दिट्ठो। वत्तालावाणंतरं सो मए सह चलिदो। अहं तस्स विस्सासं ण कुणीअ तेण वंसदंडं पयत्तेण रक्खीअ। तेण बालगेण अवबुद्धं- जं वंसदंडस्स मज्झे किमवि अत्थि। एगदिणे सो रत्तीए कुंभयारस्स घरम्मि सयित्था। पातो जदा तग्गिहादो दूरं समागदो तदा मत्थयस्सुवरि संलग्गजिण्णतिणं दिट्ठूण कवडेण मे समक्खं भणेदि- हा हा! परतिणं मए गिहीदं। एवं कहिय सो पडिणिवत्तो। तिणं कुंभयारस्स घरे पक्खिय सायंकाले ममं समीवं आगच्छइ। ताव मए भोयणं कदं। बालओ जदा भिक्खाए गच्छित्तए अहिलसइ तदा मए चिंतियं- एसो अइपवित्तो परतिणं वि ण गिण्हेदि, इदि विस्सासेण मए कुक्कुराइं परिहरिउं वंसदंडो पदिण्णो। तं गहिय सो गदो अज्जपज्जंतं ण पुण आगदो।

३. तदणंतरं महाअडवीए गच्छंतो अहं एगो वुड्ढपक्खिं पासीअ। एगम्मि महारुक्खम्मि रत्तीए बहुपक्खिसमूहो एयट्ठिदो

(१५) तापस कथा

वत्स देश की कौशाम्बी नगरी में राजा सिंहरथ निवास करते थे। उसकी रानी का नाम विजया था। वहाँ एक चोर कपट से तापस होकर रहता था। वह दूसरे की भूमि को स्पर्श नहीं करता हुआ दिन में हवा में डोलते हुए सीके में स्थित होकर के पंचाग्नि तप करता था और रात्रि में नगर में जाकर के लूट का कार्य करता था। एक समय नगर लुट गया है इस प्रकार सुनकर के राजा ने कोटपाल से कहा- हे कोटपाल! सात रात्रि के भीतर चोर को पकड़कर के लाओ अन्यथा अपना सिर लाओ। तदनन्तर चोर को प्राप्त नहीं करता हुआ वह चिंता में निमग्न हुआ अपराह्न काल में बैठा हुआ था। तभी किसी भूखे ब्राह्मण ने उससे भोजन माँगा। कोटपाल ने कहा- हे ब्राह्मण! तुम मेरे अभिप्राय को नहीं जानते हो। इधर तो मेरे प्राणों का संदेह है और तुम मुझसे भोजन माँग रहे हो। इस प्रकार के वचनों को सुनकर के ब्राह्मण ने पूछा– आपके प्राणों का संदेह किस कारण से है? कोटपाल ने कारण कहा, कोटपाल से कारण सुनकर के ब्राह्मण पूछता है कि– यहाँ कोई अत्यंत निष्पृही पुरुष रहता है? एक विशिष्ट तपस्वी निवास करता है किंतु उसका यह कार्य संभव नहीं। ब्राह्मण ने कहा कि वह ही चोर होगा क्योंकि वह अत्यंत निष्पृह है। इसी विषय में मेरा कथानक सुनो–

१. मेरी ब्राह्मणी स्वयं अपने को महासती इस प्रकार से कहती है और बार-बार कहती है कि मैं पर पुरुष के शरीर का भी स्पर्श नहीं करती हूँ। इस प्रकार कहती हुई वह अपने पुत्र को भी अपने शरीर को कपड़े से आच्छादित करके उसे दूध पिलाती है परन्तु रात्रि में वह घर के नौकर के साथ कुकर्म करती है।

२. इस प्रकार देखकर के मुझे वैराग्य हो गया और मैं इसी कारण से तीर्थयात्रा के निमित्त से निकल पड़ा। मार्ग में हितकारी भोजन के लिए बाँस की लाठी के बीच स्वर्ण की सलाखा को मैंने छिपा लिया। आगे गमन करने पर एक ब्रह्मचारी बालक दिखाई दिया। वार्तालाप के अनंतर वह मेरे साथ चल दिया। मैंने उसका विश्वास नहीं किया इसलिए उस लाठी को बड़े यत्न से रक्षा करता था। उस बालक ने जान लिया कि– इस लाठी के बीच में कुछ है। एक दिन रात्रि में वह कुम्भकार के घर सोया था। प्रातः काल होने पर जब वह उस घर से दूर आ गया तब माथे के ऊपर लगे हुए जीर्ण तृण को देखकर के कपट से मेरे समक्ष कहता है- हा! हा! मैंने पर तृण को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार कहकर वह लौटा और उस तृण को कुम्भकार के घर में फेंककर के सांय काल मेरे समीप आ गया। तब तक मैं भोजन कर चुका था। वह बालक जब भिक्षा के लिए जाने की इच्छा करने लगा तब मैंने चिंतन किया कि यह अति पवित्र है, दूसरे का तृण भी ग्रहण नहीं करता है, इस विश्वास से मैंने रास्ते में कुत्तों से बचने के लिए उसे वह लाठी दे दी। उस लाठी को लेकर के वह चला गया और आज तक पुनः लौटकर नहीं आया।

३. तदनन्तर महाअटवी में जाते हुए मैंने एक वृद्ध पक्षी को देखा। एक महावृक्ष के ऊपर रात्रि में बहुत पक्षियों का समूह

होदि। तेसु अच्चंतवुड्ढपक्खी रत्तीए सगभासाए अण्णपक्खिणं कहेदि– हे पुत्ता! दाणिं उड्डिदुं ण सक्कामि अइवुड्ढादो, कदा वि बुभुक्खाए पीडिदो तुहाण पुत्ताणं भक्खणं ण हवे तेण पातो मुहं बंधिय गंतव्वं। सव्वे भणंति हा पिउ! तुं मे पुज्जो अइवुड्ढो, कधं एवं संभवे? वुड्ढो भणइ– **'बुभुक्खियो किं ण करेइ पावं'** छुहापीडिदो किं किं पावं ण करेइ? सव्वं करेइ। तेण तस्साग्गहेण सव्वे पातो मुहं बंधिय णिग्गछंति। तेसिं णिगच्छमाणे सो वुड्ढो सगपादाहिंतो सगमुहस्स बंधणं छड्डिय पक्खिपुत्तं भक्खेइ पुणो वि ताहिंतो पुव्वं व मुहं बंधिय चिट्ठइ।

४. तदणंतरं एगं णयरं समागदो हं। तत्थ णयरे एगो चोरो तवस्सिरूवं धरिय दोहिं करेहिं मत्थयस्सुवरि महासिलापासाणं उद्धरिय दिणे उब्भसणेण ठाइ। णिसाए पुण 'हे जीव! अवसर, अहं अत्थ पादं णिक्खवेमि' त्ति भणिय भमदि। तेण सव्वे जीवा 'अवसरजीवो' त्ति णामेण कोक्कंति। सो चोरो गड्ढाइट्ठाणं पेक्खिय सुवण्णादिसहिदं पुरिसं एगागिणं पणमंतं मारिय तस्स सुवण्णधणादियं गेण्हदि। तस्स कवडं को वि ण जाणदि। एवं चउण्हं तिव्वकवडजणाणं पासिय मए एगो सिलोगो रइदो–

अबालफासिगा णारी बाम्हणोऽतिणहिंसगो।
वणे कट्ठमुहो पक्खी पुरे पसरजीवगो॥

एदाइ चत्तारि कवडाइं मए दिट्ठाइं।

एवं भणिय कोट्टवालं धीरत्तं पदाऊण सो बाम्हणो सींगट्ठिदतवस्सिसमीवं गदो। तवस्सिणो सेवगा ताओ ठाणादो तं णिग्घाडंति किंतु तेण रत्तंधो होदूण तत्थेव पडिदो। 'एसो खलु रत्तंधोत्थि ण वा' त्ति तिणस्स अंगुलिणो य फासणं णेत्ताणि अभिदो कदं सेवगेहिं। तहावि सो तहेव पासंतो वि ण पासेइ। अद्धरत्तीए गुहासरिसंधकूवे ट्ठिदस्स णयरधणस्स गहणविसग्गं सो देक्खइ। सो रत्तीए जं दिट्ठं तं पातो राइणं कोट्टवालं य कहेदि। कोट्टवालेण सो तवस्सी धरिदो। बहुदण्डेण दुक्खिदो सो मरिय दुग्गदिं पत्तो।

❑ ❑ ❑

एकत्रित होता है। उनमें अत्यंत वृद्धपक्षी रात्रि में अपनी भाषा में अन्य पक्षी से कहता है- हे पुत्रो! अब मैं उड़ने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि मैं अतिवृद्ध हूँ। कभी भी भूख से पीड़ित होकर के तुम्हारे पुत्रों का भक्षण न कर लूँ इसलिए प्रातः होने पर मुंह बाँध करके आप लोग चले जाना। सभी कहते हैं कि– पिताजी! आप तो मेरे पूज्य, अति वृद्ध हो ऐसा कैसे संभव है? वृद्ध कहता है कि– भूखा व्यक्ति कौन-कौन से पाप नहीं कर लेता? सभी पाप कर सकता है इसलिए उसके आग्रह से सभी प्रातः काल उसका मुँह बाँधकर के चले जाते हैं। उनके चले जाने पर वह वृद्ध अपने ही पैरों से अपने मुख के बंधन को छुड़ा करके उन पक्षियों के पुत्रों को खा लेता था और पुनः अपने पैरों से पहले की तरह मुँह को बाँध करके बैठ जाता था।

४. तदन्तर मैं एक नगर में पहुँचा। उस नगर में एक चोर तपस्वी के रूप को धारण करके दोनों हाथों से मस्तक के ऊपर एक बड़ी शिला पाषाण को उठाकर के दिन में खड़ा रहता था और रात्रि में हे जीव! दूर हटो, मैं यहाँ पर अपने पैर रख रहा हूँ इस प्रकार कहता हुआ भ्रमण करता था, जिससे सभी जीव उससे 'अपसरजीव के' नाम से बुलाने लगे। वह चोर गड्ढा आदि स्थान को देखकर सुवर्णादि से सहित एकाकी पुरुष को प्रणाम करते हुए मार करके उसके स्वर्ण आदि धन को ग्रहण कर लेता था। इस प्रकार उसके कपट को कोई भी नहीं जानता है। इस तरह इन चार तीव्र कपट जनों को देखकर के मैंने एक श्लोक लिखा–

''पुत्र का स्पर्श करने वाली स्त्री, तृण का घात नहीं करने वाला ब्राह्मण, वन में काष्ठ मुख पक्षी और नगर में अपसर जीव से चार महा कपटी मैंने देखे हैं।''

ऐसा कहकर के कोटपाल को धीरज बंधाकर वह ब्राह्मण सीके में रहने वाले तपस्वी के समीप गया। तपस्वी के सेवकों ने उसे उस स्थान से निकाल दिया। किंतु वह शत्रंध बनकर के पड़ा रहा। यह रात्रि में अंधा है अथवा नहीं है इस प्रकार उसके सेवकों ने शत्रंध तृण की काड़ी और अंगुली से नेत्रों को चारों ओर स्पर्श किया। फिर भी वह देखता हुआ भी नहीं देखता रहा। जब आधी रात हुई तो गुफासदृश अंधकूप में रखे हुए नगर के धन का रखना और छोड़ना, उसने देख लिया। उसने रात्रि में जो देखा प्रातः राजा और कोटपाल को वह सब कह देता है। कोटपाल ने वह तपस्वी पकड़ लिया। वह तपस्वी बहुत दण्ड से दुखी हुआ और मरण करके दुर्गति को प्राप्त हुआ।

❑ ❑ ❑

(१६) जमदंडकोट्टवाल कहा

आहीरदेसे णासिक्कणयरे राया कणयरहो णियदारकणयमालाए सह सुहेण जीवित्था। तस्स एगो जमदंडो णाम कोट्टवालो अत्थि। तस्स माया जोव्वणावत्थाए विहवा जादा। अइसुंदरी सा सणियं सणियं बहिचारिणी संभूदा। एगदिवसे ताए पुत्तबहूए अग्घं आभूसणं दिण्णं। तं च णियकंठे सज्जिया सा रत्तीए पुव्वसंकेदिदजारसमीवं गच्छमाणा आसि। जमदंडेण अंधयारे वि 'का वि सुंदरी' त्ति मुणिय एयंते उवभुत्ता। जमदंडेण तास आभूसणं गहिय सगकलत्तं समप्पिदं। तस्स कलत्तेण तमाभूसणं विलोइय वुत्तं- इणमो दु महं अत्थि, मए सस्सूआ हत्थे धरणट्ठं दिण्णं। इत्थीए वयणं सुणिय तेण चिंतिदं- मए जाए सह उवभोगो कदो सा अम्ह माया खलु होहिदि। जमदंडेण मायाअ जारस्स संजोगट्ठाणे सयं गंतूण ताअ सेवणं पुणो कदं। ताहिं आसत्तो सो गूढरीईए कुकम्मे संलग्गो।

तस्स वणिदा एवं कुकम्मं असहमाणा कोवेण रजियं कहेदि। सा रजिया मालिनिं भणइ। सा पुणु राणिं बोल्लेदि। राणी राइणं णिवेदेइ। रण्णा तस्स कुकम्मस्स णिण्णयं गुत्तचरेण करिय कोट्टवालो दंडिदो। दंडदुक्खेण मरिय सो दुग्गदिं लब्भइ।

❑ ❑ ❑

> **णिरयगदीए दुक्खं छेदणभेदणं वहो तिरिक्खेसु।**
> **देवगदीए रागो मणुवेसु बहुविवत्ती दिट्ठा॥**
> **—अनासक्तयोगी २/९**

(१६) यमदण्ड कोट्टपाल

आहीर देश के नासिक्य नगर में राजा कनकरथ अपनी स्त्री कनकमाला के साथ सुख से जीवन व्यतीत करते थे। उनके एक यमदण्ड नाम का कोट्टपाल था। उसकी माता यौवन अवस्था में ही विधवा हो गई थी। अति सुंदरी वह धीरे-धीरे व्यभिचारिणी बन गई। एक दिन उसकी पुत्रवधू ने मूल्यवान आभूषण उसे दिए। उन आभूषणों को अपने कंठ में सज्जित करके वह रात्रि में पहले से ही संकेतिक जार के समीप जा रही थी। यमदण्ड ने अंधकार में भी 'यह कोई सुंदरी है' इस प्रकार समझकर के उसका एकांत में सेवन किया। यमदण्ड ने उसका आभूषण लाकर अपनी स्त्री को समर्पित किया। उसकी स्त्री ने उस आभूषण को देखकर कहा- यह तो मेरा है, मैंने सासु के हाथ में रखने के लिए दिया था। स्त्री के वचन को सुनकर उसने चिंतन किया कि मैंने जिसके साथ उपभोग किया है वह मेरी माँ होगी। यमदण्ड ने माता के जार के संयोग स्थान पर स्वयं जाकर के उसका पुनः सेवन किया और उसमें आसक्त होकर के वह गूढ़ रीति से कुकर्म में संलग्न हो गया। उसकी स्त्री इस प्रकार के कुकर्म को सहन नहीं करती हुई, कोप से धोबिन को कहती है। वह धोबिन मालिन को कह देती है। वह मालिन फिर रानी को कहती है। रानी राजा से निवेदन करती है राजा उसके कुकर्म का- निर्णय करके गुप्तचर से उसके कुकर्म का निर्णय करके कोटपाल को दण्डित करता है। दण्ड के दुःख से मरकर के वह कोटपाल दुर्गति को प्राप्त होता है।

❑ ❑ ❑

नरकगति में छेदन-भेदन का दुःख है,
तिर्यंचों में वध(मारने) का दुःख है,
देवगति में राग का दुःख है और
मनुष्यों में बहुत विपत्ति देखी जाती है॥९॥ अ.यो.

(१७) समस्सुणवणीद कहा

अजोद्धाए णयरीए भवदत्तणामो सेट्ठो धणदत्ताए भज्जाए सह लुब्भदत्तं पुत्तं सुहेण पालित्था। एगदा सो पुत्तो वावारणिमित्तं दूरं गदो। तत्थ तेण जं धणं अज्जिदं तं सव्वं चोरेहिं चोरिदं। तेण कारणेण अच्चंतं णिद्धणो होदूण सो कम्मि मग्गे आगच्छइ। तत्थ तेण एगत्तो गोवालदो पाउं तक्कं मग्गिदं। तक्कं पिबेऊणं तस्स किंचि णवणीदं समस्सुसु लग्गिदं। तं दिट्ठूण तेण तं णवणीदं आकस्सिदं विचारिदं च- एदेण वावारं करिस्सामि। एवंपयारेण सो पडिदिणं णवणीदं संचेदि। तेण तस्स सण्णा समस्सुणवणीदमिदि पचलिदा।

एवंविहिणा जदा तं समया एगपत्थपमाणं घिअं जादं तदा सो सप्पिपत्तं णियपादसमीवं धरिय सयदि। संथरे सयमाणो विचारेइ- एदेण घिएण बहुधणं अज्जिय अहं सेट्ठो होहिमि। तदो सामंतो, महासामंतो, राया अहिराया कमेण होदूण चक्कवट्टी होस्सामि। तदाणिं सत्तखंडस्स पासादस्स उवरि मणहरसेज्जाए सयिस्सं। का वि सुंदरी वणिदा मज्झ चरणाणं कोमलकरेहि संवाहणं करिस्सइ। अहं णेहवसेण कहिस्सिदे तुमं पादसंवाहणं ण जाणासि। इत्थं भणिय हं पादेण तं ताडिस्सामि। एवं वियारमाणेण जहत्थेण पादताडणं कदं। जेण सप्पिणो पत्तं पदिदं। पदिदसप्पिणा गिहस्स दारे हुअवहो तिव्वेण पज्जलिदो। तम्मि सो वि दद्धो मुदो य दुग्गइं पत्तो।

❑ ❑ ❑

जंलद्धमज्ज किंचि वि तद्देवेणेव विहव-सोहग्गं।
तं परिचइदुं भावो पुरिसत्थो दुल्लहो लोए॥
—अनासक्तयोगी १/१

(१७) श्मश्रुनवनीत की कथा

अयोध्या नगरी में भवदत्त नाम का सेठ अपनी धनदत्ता नाम की भार्या के साथ लुब्धदत्त नाम के पुत्र का सुख से पालन करते हुए रहता है। एक बार वह पुत्र व्यापार के निमित्त से दूर चला गया। वहाँ उसने जो धन अर्जित किया वह सब चोरों ने चुरा लिया। इस कारण से अत्यंत निर्धन होकर के वह किसी मार्ग से आ रहा था। वहाँ उसने एक गोपाल से पीने के लिए छाछ माँगी। छाछ पी चुके होने पर कुछ नवनीत उसकी मूछों में लग गया। उसे देखकर उसने वह नवनीत निकाला और विचार किया कि– इसी से व्यापार करूँगा। इस तरह वह प्रतिदिन नवनीत का संचय करने लगा। जिससे उसका नाम श्मश्रुनवनीत नाम से प्रचलित हो गया।

इस प्रकार जब उसके पास एक प्रस्थ प्रमाण घी हो गया तब वह घी के पात्र को अपने चरणों के पास रखकर शयन करता था। बिस्तर पर सोते हुए विचार करता है कि– इस घी से बहुत धन कमाकर के मैं सेठ हो जाऊँगा। फिर सामंत हो जाऊँगा। फिर महासामंत, फिर राजा, अधिराजा इस तरह क्रम से होकर के चक्रवर्ती हो जाऊँगा। तब सात खण्ड के महल के ऊपर मनोहर शय्या पर शयन करूँगा। कोई सुंदर स्त्री मेरे चरणों को अपने कोमल हाथों से दबायेगी। मैं स्नेह के वश कहूँगा– तुम पैर दबाना नहीं जानती हो, इस प्रकार कहकर मैं अपने पैरों से उसको ताड़ित करूँगा। ऐसा विचार करते हुए उसने यथार्थ में ही पैरों से ताड़न कर दिया जिससे कि घी का पात्र गिर पड़ा। गिरे हुए घी के द्वारा गृह के द्वार पर रखी हुई अग्नि प्रज्वलित हो गई। उस अग्नि में वह भी जल गया। उसका मरण हुआ और दुर्गति को प्राप्त हुआ।

❑ ❑ ❑

जो कुछ भी वैभव और सौभाग्य आज प्राप्त हुआ है
वह दैव(भाग्य) से ही होता है।
उसे त्याग करने का भाव लोक में दुर्लभ पुरुषार्थ है॥१॥ अ.यो.

(१८) सिरिसेणरायकहा

मलयदेसस्स रयणसंचयपुरे राया सिरिसेणो णिवसीअ। तस्स दोण्णि राणीओ जेट्ठा सिंहणंदिदा हेट्ठा अणिंदिदा आसि। जेट्ठाअ सुदो णाम इंदो हेट्ठाअ सुदो णाम उविंदो अत्थि। तण्णयरे एगो सच्चगी णाम बम्हणो णियवणिदाए जंबूणामाए सह सच्चभामाभिहं पुत्तिं पालेइ।

इदो पाडलिपुत्तणयरे एगो रुद्दभट्टो बम्हणो बालगाणं वेदं पढावीअ। तस्स दासीपुत्तो कपिलो तिक्खबुद्धिकारणेण छलेण वेदं सुणीअ। तेण सो वेदविण्हू विदुसो जादो। रुद्दभट्टो कपिलस्स छलं णादूण कुद्धो होदि पच्छा तं णयरत्तो बाहिर णिग्घाडदि। सो कपिलो दुगूलसहिदो जण्होपवीदं धारिय बम्हणभेसेण रयणसंचयणयरे आगच्छइ। सच्चगिबम्हणेण दिट्ठं 'एसो सुंदरो को वि वेदपारगामी पंडिदोत्थि।' मे तणयाजोग्गो खलु इमो त्ति चिंतिय सच्चभामा तेण सह विवाहिदा। सच्चभामा रदिकाले तस्स विडसरिसं चेट्ठियं मुणिय मणम्मि मीमंसदि- 'एसो कुलीणो अत्थि ण वा।' संदेहेण खेदं पत्ता सा मोणेण चिट्ठदि। एत्थ अवसरे रुद्दभट्टो तित्थजत्ताणिमित्तेण रयणसंचयणयरे समागदो। कपिलो तं पणमिय णियधवलगिहे णेइत्था। भोयणवत्थादिणा तं संमाणिदूण सव्वसमक्खं उदीरेदि- 'एसो खलु मह पिऊ अत्थि।' एगदिवसे सच्चभामा रुद्दभट्टस्स विसिट्ठभोयणेण सुवण्णदाणेण य अतिहिसम्माणं देदि पच्छा तस्स चरणेसु चिट्ठिय पुच्छेइ- 'कपिलस्स सहावे तुज्झ सहावे य महंतरो दिस्सदि। किं एस तुज्झ पुत्तं खलु अत्थि! सच्चं भण।' तदा रुद्दभट्टो भणइ- पुत्ति! एसो खलु मे दासीपुत्तोत्थि। एवं सुणिय सा विरत्ता जादा। सा सिंहणंदिदाराणीए सरणं पत्ता। राणी वि तं पुत्तिं मण्णिय रक्खेदि। एगदिवसे सिरिसेणराया परमभत्तीए विहिपुव्वियं अक्ककित्ति-अमिदगइमुणीणं चारणरिद्धिधराणं दाणं देदि। राणी वि रायसहिया दाणं दाइ। सच्चभामा वि तक्कालं अणुमण्णइ। दाणपहावेण तिजणा भोगभूमीए उववज्जंति। राया सिरिसेणो आहारदाणपहावेण परंपराए संतिणाहतित्थयरो हूओ।

❑ ❑ ❑

कज्जारंभादो सव्वत्थ अणुगूलदा खलु कज्जसिद्धीं।
—अनासत्तयोगी

(१८) श्रीसेन राजा की कथा

मलय देश के रत्नसंचयपुर नगर में राजा श्रीसेन निवास करते थे। उसकी दो रानी थीं। ज्येष्ठ रानी सिंहनन्दिता और छोटी रानी अनिंदिता थी। ज्येष्ठ रानी के इन्द्र नाम पुत्र था और छोटी रानी के उपेन्द्र नाम का पुत्र था। उस नगर में एक सत्यकी नाम का ब्राह्मण अपनी जम्बू नाम की स्त्री के साथ सत्यभामा नाम की पुत्री का पालन करते हुए रहता था।

इधर पाटलिपुत्र नगर में एक रुद्रभट्ट नाम का ब्राह्मण बालकों को वेद पढ़ाता था। उसकी दासी का पुत्र कपिल तीक्ष्ण बुद्धि के कारण से छल से वेदों को सुनता था। इसलिए वह वेदों में पारगामी विद्वान हो गया। रुद्रभद्र कपिल के छल को जानकर क्रुद्ध होता है। और बाद में उसने नगर से बाहर निकाल देता है। वह कपिल दुपट्टा सहित यज्ञोपवीत को धरण करके ब्राह्मण के भेष में रत्नसंचय नगर में आ जाता है। सत्यकी ब्राह्मण ने देखा कि यह सुंदर पुरुष वेद का पारगामी पण्डित है। यह मेरी पुत्री के योग्य है, इस प्रकार चिंतन करके उसने सत्यभामा का विवाह उसके साथ कर दिया। सत्यभामा रतिकाल के समय उसकी विट सदृश चेष्टा को जानकर मन में विचार करती है– 'यह कुलीन पुरुष है या नहीं।' संदेह से खेद को प्राप्त हुई वह मौन से रह जाती है। एक अवसर पर रुद्रभट्ट तीर्थयात्रा के निमित्त से रत्नसंचय नगर में आता है। कपिल उसको प्रणाम करके अपने धवल गृह में ले गया। भोजन, वस्त्र आदि से उसका सम्मान करके सबके समक्ष कहता है 'यह मेरे पिता हैं'। एक दिन सत्यभामा रुद्रभट्ट को विशेष भोजन तथा सुवर्ण आदि दान के द्वारा अतिथि सम्मान देती है और बाद में उसके चरणों में बैठकर के पूछती है कि– कपिल के स्वभाव में और आप के स्वभाव में बहुत अंतर दिखाई देता है। क्या यह तुम्हारा वास्तव में पुत्र है? सत्य कहिए। तव रुद्रभट्ट कहता है- हे पुत्री! ये मेरा दासी पुत्र है। इस प्रकार सुनकर के वह विरक्त हो जाती है। वह सिंहनंदिता नामक बड़ी रानी की शरण में चली जाती है। सिंहनंदिता रानी भी उसको पुत्री मानकर के रख लेती है। एक दिन श्रीसेन राजा ने परम भक्ति से विधिपूर्वक अर्ककीर्ति और अमितगति चारण ऋद्धिधारी मुनियों के लिए दान देते हैं। रानी भी राजा के साथ दान देती है। सत्यभामा भी उस समय पर उसकी अनुमोदना करती है। दान के प्रभाव से वह तीनों ही जन भोगभूमि में उत्पन्न होते है। राजा श्रीसेन आहारदान के प्रभाव से परंपरा से शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। यह आहारदान का फल है।

❑ ❑ ❑

कार्य के आरम्भ से ही सर्वत्र अनुकूलता ही कार्य की सिद्धि है। अ.यो.

(१९) वसहसेणा कहा

जणवददेसस्स कावेरीपत्तणणामणयरे राया उग्गसेणो वसित्था। तत्थ एयो धणवई सेट्ठो धणसिरिदारेण सह णिवसइ। तस्स पुत्ती वसहसेणा आसि। वसहसेणाअ रूववई णामा धत्ती पेच्छइ- वसहसेणाअ णाहजले ण्हाऊण गड्ढादो आगंतूण एगो कुक्करो सरोगो णीरोगो जादो। धत्ती विचारेदि- कुक्करस्स णीरोगदाए कारणं पुत्तीए णाहजलमेव। धत्ती सगमायाअ सव्वसमायारं कहेदि। ताअ माया बारहवासेण णेत्तरोगेणे पीडिदा। एगदिणे परिक्खट्ठुं माआए सगणेत्ताणि तज्जलेण धोआणि। णेत्तपक्खालणकाले णेत्तपीडा विणट्ठा। इदि घडणादो धत्ती सव्वरोगदूरकरणे समत्था त्ति पसिद्धी जादा।

एगसमये उग्गसेणरायणे मंत्ती जुद्धकारणेण परदेसे पविट्ठो। तत्थ विसमिस्सिदजलपाणेण जरिदो। जदा णियदेसे आगदो तदा धत्तीए जलसिंचणेण णीरोगो कदो। राया वि तद्देसे गदो। सो वि जरेण अभिभूदो पडिणिवत्तो। रणपिंगलमंतिणा जलवित्ततं सुणिय राया वि जलं मग्गेइ। धत्तीए राया णिरोगो कदो। णिरोगी राया धत्तिं जलविसये पुच्छेदि। धत्ती सव्वं सच्चं भणदि। राया धणवइसेट्ठं कोक्कइ। सेट्ठो भीदेण आगच्छइ। राया तं सम्माणिय वसहसेणं विवाहट्ठं जाचेदि। सेट्ठो णिवेदइ- राय! जदि अट्ठाणिहदिणेसु जिणबिंबपूयं कुणसु, पिंजरट्ठिदं पक्खिपसुसमूहं छंडिज्जहि बंदीगिहट्ठिदाणं मणुसाणं बंधणेण मुत्तं कुण तो पुत्तिं विवाहिस्सिमि। राया सव्वं सीकरेदि। वसहसेणा तेण वूढा पट्टराणीपदेण य पदिट्ठिदा। राया सव्वकज्जं छंडिय पिआए वसहसेणाए सह रइकीडाए संलग्गो।

एत्थ अवसरे वाराणसीणयरस्स पुढवीचंदाभिहो राया तस्स बंदीगिहे बद्धोसि। अच्चंतबलवंतो खलु एसो त्ति मुणिय सो विवाहकाले वि ण छंडिदो। पुढवीचंदस्स णारायणदत्ता राणी मंतीहिं सह मंतेइ। पुढवीचंदस्स मुत्तीए वाराणसीणयरीए सव्वत्थ वसहसेणाणामेण भोयणगिहाणि णिम्माविदाणि। तेसु कस्स वि जणस्स पवेसो णिसिद्धो णासि। तेसु भोयणगिहेसु भोयणं किच्चा जे बम्हणा कावेरीपत्तणे गदा तेहिं वित्ततं सुणिय रुट्ठा धत्ती वसहसेणं पुच्छेइ- मइत्तो पुच्छाए विणा तुमं भोयणगिहाणि कधं णिम्मावेसि। वसहसेणा एवंविहवित्ततं राइणं कहिय पुढवीचंदराइणं बंधादो मुंचावेदि। पुढविचंदेण एगस्स चित्तपट्टस्स उवरि वसहसेणाए सह उग्गसेणस्स चित्तं णिम्माविय हेट्ठाए पणामं कुव्वंत णियचित्तं कारिदं। तं चित्तं ताणं देक्खाविदं। तेण वसहसेणा राणी कहिज्जईअ- हे देवि! तुवं अम्ह माया अत्थि, तुज्झ पसाएण मे जम्मं सहलीभूदं। उग्गसेण राइणा सम्माणेण कहिदं- तुमए मेहपिंगलसमीवं गच्छिअव्वं। एवं कहिअ तेहि सो वाराणसीए पेसिदो। उग्गसेण राइणा उग्घोसिदं- रायसहाए ट्ठिदस्स मज्झ जो पुरक्कारो आगच्छिहिदि तस्स अद्धभागं मेहपिंगलस्स अद्धभागं वसहसेणस्स समप्पेमि। एवं णियमेण एयस्सि रयणकंबला पाहुडे समागदा। राइणा तण्णामेहि चिण्हिदकंबला दोण्हं दिण्णा।

(१९) वृषभसेन की कथा

जनपद देश की कावेरी नाम के नगर में राजा उग्रसेन रहते थे। वहाँ एक धनपति सेठ धनश्री स्त्री के साथ निवास करता था। उसके पुत्री वृषभसेना थी। वृषभसेना की रूपवती नाम की धाय देखती है कि वृषभसेना के स्नान के जल में नहाकर गड्ढे से निकलकर के एक कुत्ता जो रोगी था वह निरोग हो गया। धाय विचार करती है कि कुत्ते की निरोगता का कारण पुत्री के स्नान का जल ही है। धाय अपनी माता से सब समाचार कह देती है। उसकी माता बारह वर्ष से नेत्र रोग से पीड़ित थी। एक दिन परीक्षा करने के लिए माता ने अपने नेत्रों को उसके जल से धोया। नेत्र को धोने के समय ही वह नेत्र की पीड़ा चल गई। इस घटना से धाय सर्व रोग को दूर करके में समर्थ है, इस प्रकार उसकी प्रसिद्ध हो गई।

एक समय उग्रसेन राजा का मंत्री युद्ध के कारण से परदेश में गया। वहाँ विष मिश्रित जल के पान से उसे ज्वर आ गया। जब वह अपने देश में आया तब धाय ने जल सिंचन से उसको निरोग कर दिया। राजा उग्रसेन भी उस देश में गया, वह भी ज्वर से पीड़ित होकर के लौटकर आया। रणपिंगल मंत्री से जल का वृतांत सुनकर राजा भी जल की याचना करने लगा। धाय ने राजा को भी निरोग कर दिया। निरोगी राजा धाय को जल के विषय में पूछता है, धाय सब कुछ सच बता देती है। राजा धनपती सेठ को बुलाता है। सेठ डरकर के आता है। राजा उस सेठ को सम्मानित करके वृषभसेन के विवाह के लिए याचना करता है। सेठ निवेदन करता है राजन्! यदि अष्टाह्निका के दिनों में आप जिनबिम्बों की पूजा करें और पिंजरे में स्थित सभी पक्षी और पशु के समूह को छोड़ दें। बन्दीगृह के स्थित मनुष्यों को बंधन से मुक्त कर दें तो मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके साथ कर दूँगा। राजा सब स्वीकार कर लेता है। वृषभसेना उसके साथ विवाहिता कर दी गई और पट्टरानी के पद से वह प्रतिष्ठित हुई। राजा सब कार्यों को छोड़कर के प्रिय वृषभसेना के साथ रतिक्रिया के संलग्न हो गया।

इसी अवसर पर वाराणसी नगरी का पृथ्वीचंद्र नाम का राजा उसके बन्दीगृह में बंधा हुआ था। अत्यंत बलवान वह राजा है, इस प्रकार से मानकर के वह विवाह काल में भी छोड़ा नहीं गया। पृथ्वीचंद्र की नारायणदत्ता नाम की रानी मंत्रियों के साथ मंत्रणा करती है। पृथ्वीचंद्र को छुड़ाने के लिए वाराणसी नगरी में सर्वत्र वृषभसेना रानी के नाम से भोजन गृह निर्मापित किए गए। जिसमें किसी के लिए भी प्रवेश करने का निषेध नहीं था। उन भोजनगृहों में भोजन करके जो ब्राह्मण कावेरी पत्तन गए थे उनसे उस वृत्तान्त को सुनकर के रुष्ट हुई रूपवती धाय ने वृषभसेना से पूछा कि मुझसे पूछे बिना तुम भोजनगृहों का निर्माण क्यों करा रही हो? वृषभसेना उस सर्व वृत्तान्त को राजा से कहकर के पृथ्वीचंद्र राजा को बंधन से छुड़वा देती है। पृथ्वीचंद्र ने एक चित्रपट्ट के ऊपर वृषभसेना के साथ उग्रसेन के चित्र को बनाकर के और नीचे प्रणाम करते हुए अपना चित्र बना लिया। उस चित्रपट्ट को उन दोनों के लिए दिखाया गया। उसने वृषभसेना रानी से कहा– कि हे देवी! तुम मेरी माता हो, तुम्हारे प्रासाद से मेरा जन्म सफल हुआ है। उग्रसेन राजा ने सम्मान करके कहा कि तुम्हें मेघपिंगल के समीप जाना चाहिए। ऐसा कहकर के उन दोनों ने उसे

एगदिवसे मेहपिंगलस्स राणी विजया मेहपिंगलसण्णिदकंबलं आवरिय केणचि कज्जेण रूववईसमीवं गदा। तत्थ तस्स कंबलो परिवट्टिदो। तेण सा वसहसेणाणामेण अंकिदं कंबलं आणेइ। एगदा वसहसेणाणामेण अंकिदं तं कंबलं आवरिय मेहपिंगलो उग्गसेणसहाए गदो। राया तं कंबलं पेक्खिय कोहेण रत्तणेत्तो जादो। मज्झ उवरि राया कुविदो त्ति जाणिय भएण दूरं गदो। कोहजुत्तेण उग्गसेणराइणा वसहसेणा समुद्दजले णिक्खाविदा। वसहसेणाए पइण्णा कदा जदि एदम्हादो उवसग्गादो णिग्गदा तो तवं करिस्सामि। वदमाहप्पेण जलदेवदाए सा रक्खिदा सिंहासणादिपदाणेण य पूजिदा। एवं सुणिय राया वि तं णेदुं गदो। पडिणिवत्तिकाले राया वणमज्झे गुणहरणामं ओहिणाणिं मुणिं पस्सइ। वसहसेणा तं पणमिय पुव्वभवं पुच्छेइ। भयवंतो मुणी कहेदि- पुव्वभवे एदम्मि णयरे तुव णागसिरी णामा बम्हणपुत्ती आसि। तत्थ णिवस्स देवमंदिरे पच्छलणकज्जं करीअ। एगदिणे अवरण्हकाले कोटस्स अब्भंतरे वाउरहिदगहणट्ठाणे मुणिदत्तणामा मुणी काउसग्गेण विराजमाणो आसि। तुमए कोहेण कहिदं- कडगणयरेण राया एत्थ समागच्छिहदि अओ तुमं एत्तो उट्ठ, हं पक्खालेमि। ताव मुणी मोणेण काउसग्गेण एव ठादि। तेण तुमए कच्चरेण तं आवरिय पच्छालिणी मारिदा। पातो जदा राया आगदो कीडं कुणंतो तत्थ ठाणे आगच्छइ तदा उस्सासेण कंपिदं तं ठाणं पेच्छदि। तत्तो मुणी बाहिर णिग्घाडिदो। तदणंतरं अप्पणिंदणं करिय तुमए धम्मे सद्धा कदा। मुणिपीडाअ संतिट्ठं महादरेण विसिट्ठभेसजेण सेवा वि विहिदा। तदणंतरं णिदाणेण मरिय तुमं एत्थ वसहसेणा पुत्ती जादा। ओसहदाणफलेण सव्वोसहिरिद्धि तुमं फलं पत्ता। कच्चरेण आवरिदं, तेण कारणेण कलंकिदा। एवं पुव्वभवं सुणिऊण वसहसेणा मुणिसमीवं अज्जिया जादा।

❑ ❑ ❑

गुरुदिट्ठीए सेयं गुरुआसीच्छाया कप्परुक्खोव्व।
गुरुवयणं भमहरणं सग्गसुहं गुरुपुच्छिदो हं॥
—अनासक्तयोगी २/१८

वाराणसी भेज दिया। उग्रसेन राजा ने घोषणा करवा दी कि राजसभा में स्थित मेरे लिए जो पुरस्कार आएगा उसका आधा भाग मेघपिंगल को और आधा भाग वृषभसेना के लिए समर्पित करूँगा। इस प्रकार के नियम से एक दिन रत्नकंबल भेंट में आया। राजा ने उस नाम से चिह्नित कंबल दोनों का दे दिया।

एक दिन मेघपिंगल की रानी विजया मेघपिंगल वाला कंबल ओढ़कर किसी कारण से किसी कार्य से रूपवती के समीप गई। वहाँ उसका कंबल बदल गया। अर्थात् वृषभसेना के नाम से अंकित कंबल को वह ले आई(मेघपिंगल के नाम से अंकित कंबल को वहाँ छोड़ आई)। एक दिन वृषभसेना के नाम वाले कंबल को ओढ़कर मेघपिंगल उग्रसेन की सभा में गया। राजा उग्रसेन उस कंबल को देखकर क्रोध से लाल नेत्रों वाला हो गया। यह मेरे ऊपर कुपित हो ऐसा जानकर वह भय से दूर चला गया। क्रोध से युक्त राजा उग्रसेन ने वृषभसेना को समुद्रजल में फिकवा दिया। वृषभसेना ने प्रतिज्ञा की–यदि इस उपसर्ग से निकल गई तो मैं तप करूँगी। व्रत के महात्म्य से उसकी रक्षा की और सिंहासन आदि प्रदान करके उसकी पूजा की। इस प्रकार सुनकर राजा भी उसे लेने के लिए गया। वापस लौटते समय वह राजा गुणधर नाम के अवधिज्ञानी मुनि को देखता है। वृषभसेना उन मुनिराज को प्रणाम करके पूर्वभवों को पूछती है। भगवान् मुनि कहते हैं कि–पूर्व भव में इसी नगर में तुम नागधर नाम की ब्राह्मण पुत्री थी, वहाँ राजा के देव मंदिर में झाड़ने का काम करती थी। एक दिन अपराह्नकाल में कोट के भीतर वायु रहित गगन स्थान में मुनिदत्त नाम के मुनि कायोत्सर्ग से विराजमान थे। तुमने क्रोध से कहा कि कटक नगर से राजा यहाँ आयेंगे अतः तुम यहाँ से उठो, मुझे झाड़ू लगाना है। तब मुनि मौन से कायोत्सर्ग से ही स्थित रहे। तदनन्तर तुमने कचड़े से उनको ढककर उन्हें झाड़ू मार दी। प्रातःकाल जब राजा आया और क्रीड़ा करता हुआ उस स्थान पर जाता है तब उश्वांस से कंपायमान होता हुआ उस स्थान को देखता है। मुनि को बाहर निकालता है। तदनन्तर आत्मनिंदा करके तुमने धर्म में श्रद्धा करली। मुनि की पीड़ा को शांत करने के लिए महा आदर से विशिष्ट औषधि के द्वारा उनकी सेवा भी की। तदनन्तर निदान से मरकर यहाँ वृषभसेना नाम की पुत्री हुई हो। औषधि दान के प्रभाव से सर्वौषधिऋद्धि के फल को प्राप्त हुई हो। मुनिराज को कचड़े से ढकने के कारण कलंकित हुई हो। इस प्रकार से मुनिराज से पूर्वभव को सुनकर मुनि के समीप आर्यिका हो जाती है। ❑ ❑ ❑

गुरु की दृष्टि में ही कल्याण है,
गुरु आशीष की छाया कल्पवृक्ष के समान है।
गुरु के वचन भ्रम को दूर करने वाले हैं।
गुरु ने मुझे पूछा है, इसमें स्वर्गसुख है॥१८॥ अ.यो.

(२०) कोण्डेस कहा

कुरुमणिगामे एगो गोविंदो णाम गोवो णिविंसु। तेण एगदा कोडरमज्झे एगं पाचीणं सत्थं पत्तं। तस्स सत्थस्स तेण पूया कदा पच्छा भत्तिपुव्वयं पउमणंदिमुणिस्स सत्थं दिण्णं। तस्स सत्थस्स वक्खाणं पुव्वं वि अणेगेहि मुणिहिं कदं पूयिदं य। गोविंदो णिदाणेण मरिय तस्सेव गामे गामपमुहस्स पुत्तो जादो।

इक्कसि तं पउमणंदिमुणिं दिट्ठूण तस्स जाइसुमरणं हवीअ। जेण तवं गिण्हिय कोण्डेसणामगो सत्थपारगामी मुणी जादो। सत्थदाणस्स फलं इदं णादव्वं।

❑ ❑ ❑

(२१) सूयर कहा

मालवदेसे घडगामे देविलणामस्स कुलालो धमिल्लणामस्स णाई य णिवसित्था। तेहिं पहियाणं विस्समणट्ठं एगं धम्मट्ठाणं णिम्माविदं। एगदिणे देविलेण मुणी पढमं ठाआविज्जीअ पच्छा धमिल्लेण वि एगो परिव्वाजगो साहू आणीदो। धमिल्लपरिव्वाजगेहि सो मुणी तट्ठाणादो णिव्वासिदो। मुणी बाहिर रुक्खस्स अहो रयणीए चिट्ठमाणो दंसमसगसीतादिबाहं सहीअ।

पातो कुद्धेण देविलेण धमिल्लेण सह जुद्धं कदं। देविलो मरिय विंझाचले सूयरो धमिल्लो य वग्घो जादो। जम्मि गुहाए सूयरो णिवसइ तम्मि एगदा समाहिगुत्ततिगुत्तणामा दो मुणी आगच्छंति ठांति य। मुणिदंसणेण देविलचरस्स सूयरस्स जाइभरणं जादं। जेण तेण धम्मसवणं वदग्गहणं य कदं। तक्काले मणुयगंधं जिग्घंतो वग्घो वि तत्थ समागच्छइ। सूयरो मुणिरक्खाणिमित्तं गुहाद्दारे ठादि। सूयरेण वग्घेण सह पुणो वि जुद्धं कदं। दो वि परोप्परं जुद्धेण मुदा। सूयरो मुणिरक्खाए अहिप्पाएण मरिय सोहम्मसग्गे देवो जादो। वग्घो मुणिभक्खणस्स अहिप्पाएण मरिय णरयं गदो। वसदिगादाणस्स फलं एदं णादव्वं।

❑ ❑ ❑

(२०) कोण्डेश कथा

कुरूमणि ग्राम में एक गोविन्द नाम का ग्वाला रहता था। उस ग्वाले ने एक बार कोटर के बीच में एक प्राचीन ग्रन्थ (शास्त्र) प्राप्त किया। बाद में भक्तिपूर्वक पद्मनन्दी मुनि को वह शास्त्र प्रदान कर दिया। उस शास्त्र का व्याख्यान पहले भी अनेक मुनियों के द्वारा किया गया था। और वह शास्त्र अनेक मुनियों के द्वारा पूजित था। गोविन्द निदान के साथ मरकर के उसी ग्राम में ग्राम प्रमुख का पुत्र हुआ।

एक बार उन्हीं पद्मनन्दी मुनिमहाराज को देखकर के उसे जाति स्मरण हुआ जिससे वह तप को ग्रहण करके कोण्डेश नाम का शास्त्र में पारगामी मुनि हुआ। शास्त्र दान का यह फल जानना चाहिए।

❑ ❑ ❑

(२१) शूकर की कथा

मालव देश में घट ग्राम में देविल नाम का एक कुम्हार रहता था। वहीं पर धमिल्ल नाम का एक नाई रहता था। उन दोनों ने पथिकों के विश्राम कराने के लिए एक धर्म स्थान का निर्माण कराया था। एक दिन देविल ने मुनि के लिए वहाँ प्रथम स्थान दे दिया। बाद में धमिल्ल भी एक परिव्राजक साधु को ले आया। धमिल्ल और परिव्राजक साधु ने उन मुनि को उस स्थान से बाहर निकाल दिया। मुनिमहाराज बाहर वृक्ष के नीचे रात्रि में बैठे रहे और दंशमसक, शीत आदि की बाधओं को सहन करते रहे।

प्रातः क्रुद्ध हुए देविल ने धमिल्ल के साथ में युद्ध किया। देविल मरकर के विंध्याचल पर्वत पर शूकर हुआ और धमिल्ल मरकर के व्याघ्र हुआ। जिस गुफा में शूकर निवास करता था उसी में एक बार समाधिगुप्त और त्रिगुप्त नाम के दो मुनिमहाराज आये और वही पर ठहर गये। मुनि के दर्शन से देविल की पर्याय से आये उस शूकर को जाति स्मरण हो गया। जिस कारण से उसने धर्म श्रवण किया और व्रतों को ग्रहण किया। उसी समय पर मनुष्य की गंध को सूंघता हुआ वह व्याघ्र भी वहीं आ गया। शूकर मुनिरक्षा के निमित्त से गुफा के द्वार पर स्थित रहा। शूकर ने व्याघ्र के साथ पुनः युद्ध किया। दोनों ही परस्पर में युद्ध करके मरण को प्राप्त हुए। शूकर मुनिरक्षा के अभिप्राय से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। व्याघ्र मुनिभक्षण के अभिप्राय से मरकर नरक में गया। वसतिका दान का यह फल जानना चाहिए।

❑ ❑ ❑

(२२) भेगस्स कहा

मगहदेसे राजगिहणयरे सेणिगराया रज्जं कुणित्था। तत्थेव णागदत्तसेट्ठो वि भवदत्ताभज्जाए सह णिवसीअ। सो सेट्ठो सया मायापरिणामेहि वट्टंतो गिहकज्जं धम्मकज्जं य कुणीअ। तेण मायकसायेण मरिय सगगिहंगणस्स वावीए भेगो जादो। भवदत्तं वावी समीवं दिट्ठूण भेगस्स जाइंभरणं जादं। जेण तस्समीवं आगंतूण तद्देहे उच्छलइ। भवदत्ताए पयासेण भेगो पुह कदो। पुहकदे वि टर्रटर्रसद्देण पुणो वि तस्समीवं आगंतूण तद्देहे आरोहदि। सेट्ठाणी विचारेइ– 'एसो मे को वि इट्ठो हवे।' एगदा सा ओहिणाणिं सुव्वदमुणिं तव्विसए पुच्छेइ। मुणिणा सव्ववित्ततं भणियं। सेट्ठाणी तं गहिय गिहे गोरवेण सुरक्खाए रक्खेदि।

इक्कसि वड्ढमाणतित्थयरस्स समवसरणं वइभारपव्वदे समागदं। सेणिगराइणा तं समायारं सुणिय असेसरज्जे भेरी दाविदा। सव्वेहि वंदणट्ठं गंतव्वं। जदा सेट्ठाणी वि वंदणट्ठं गिहत्तो णिग्गदा तदा भेगो वि तदट्ठं वावित्तो एगं कमलं घेप्पिय णिगच्छीअ। गच्छंतो सो रायहत्थिणो पादस्स अहो आगच्छइ। पदभारेण मुओ सो सोहम्मसग्गे महड्ढिओ देवो हूओ। ओहिणाणेण पुव्वभवस्स वित्ततं णादूण सिग्घं हि समवसरणे आगच्छइ। देवस्स मउडस्स भेगचिण्हं विलोइय सेणिगराया तस्स कारणं पुच्छइ। गोयमसामिणा सव्ववित्ततं जहा घडिदं तहा कहिदं। सव्वेहि पूयाइसयो गणहरमुहेण पच्चक्खं दिट्ठो।

❑ ❑ ❑

पूयं पकुव्वंति जिणेसराणं, सयाट्ठदव्वेण सुविसुद्धचित्ता।
जे सावया पावविणासणट्ठं, पावेंति ते सोक्खमणुत्तरं तं॥
—अनासक्तयोगी १/२२

(२२) मेंढ़क की कथा

मगध देश के राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वहीं पर नागदत्त नाम का सेठ अपनी भवदत्ता नाम की भार्या के साथ निवास करता था। वह सेठ सदैव माया परिणामों से युक्त होता हुआ गृहकार्य और धर्म कार्य को करता था। इसलिए माया कषाय के साथ मरकर के वह अपने ही घर के आँगन की वापी में एक मेंढक बन गया। भवदत्ता सेठानी को वापी के समीप देखकर के उस मेंढ़क को जाति स्मरण हो गया। जिससे उसके समीप आकर के उसकी देह पर वह उछलने लगा। भवदत्ता ने प्रयास से उस मेंढ़क को अलग किया। अलग करने पर भी टर्र–टर्र शब्द से पुनः उसके समीप आकर के उसकी देह पर चढ़ जाता था। सेठानी विचार करती है कि– 'यह मेरा कोई इष्ट हो सकता है।' एक बार वह अवधिज्ञानी सुव्रत मुनि महाराज से उस मेंढ़क के विषय में पूछती है। मुनि महाराज ने सर्व वृत्तान्त कह दिया। सेठानी उस मेंढ़क को लेकर के घर में गौरव और अच्छी रक्षा के साथ में उसको रखने लगी।

एक बार वर्द्धमान तीर्थंकर का समवसरण वैभार पर्वत पर आया। श्रेणिक राजा ने उस समाचार को सुनकर के समस्त राज्य में भेरी बजवा दी कि सभी को वन्दना करने के लिए जाना है। जब सेठानी भी वन्दना करने के लिए घर से निकली तब वह मेंढ़क भी वन्दना करने के लिए वापी से एक कमल को ग्रहण करके निकल आया। रास्ते में जाते हुए वह राजा के हाथी के पेरों के नीचे आ गया। हाथी के पैर के भार से वह मरा और सौधर्म स्वर्ग में महान ऋद्धि वाला देव हुआ। अवधिज्ञान से पूर्व भव के वृत्तान्त को जानकर के शीघ्र ही वह देव समवशरण में आ जाता हैं। देव के मुकुट पर मेंढक के चिह्न को देखकर के श्रेणिक राजा उसका कारण पूछते हैं। गौतमस्वामी उसके वृत्तान्त को जैसा घटित हुआ है वैसा ही कह देते हैं। इस प्रकार सभी ने पूजा का अतिशय गणधर भगवान के मुख से प्रत्यक्ष सुना।

❑ ❑ ❑

जो श्रावक जिनेश्वरों की पूजा सुविशुद्ध चित्त होकर सदा
अष्ट द्रव्य से पाप का विनाश करने के लिए करते हैं
वे उस अनुत्तर(उत्कृष्ट) सुख को प्राप्त करते हैं॥२२॥ अ.यो.

(२३) सुकोसलमुणि कहा

राया पजावालो अजोद्धाए पजापालणेण चिट्ठीअ। तत्थेव एगो पहाणसेट्ठो सिद्धत्थो बत्तीसभज्जाहिं सह सुहेण णिवसीअ। सेट्ठस्स को वि पुत्तो ण होईअ। तेण जयावई पियराणी तदट्ठं जक्खे पूजेइ। एगदा दिव्वणाणी मुणी भणइ- पुत्ति! तुमं कुदेवभत्तिं चइत्ता जिणधम्मे रज्जसु जेण सत्तदिणब्भंतरे गब्भविभूदिं पावेस्सइ। सा मुणिवयणे संतुट्ठा होऊण जिणधम्मे दिढीभूदा। ताअ कइवयदिणेसु सुकोसलणामो सुदो संभूदो। पुत्तस्स मुहं पासिय सेट्ठो णयंधरमुणिसमीवं मुणी होदि। मं बालपुत्तिं चइऊण सिद्धत्थो मुणी जादो त्ति चिंतिय सा जयावई अइकुद्धा भवइ। किं मुणिरायस्स दाणिं दिक्खापदाणं जोग्गं हवे? त्ति तक्किय कोहेण णियगिहे मुणिस्स पवेसो सयाकालं पडिसिद्धो। सणियं सणियं सुकोसलो वड्ढिंगदो। बत्तीस इत्थीहिं सह विवाहिदो सो सव्विंदयसुहं भुंजइ।

एगदा पासादस्स छत्ते माया धत्ती सुकोसलो य वणिदाहिं सह णयरसोहं पस्संति। तदा दूरा विहरंतो चरियाए सिद्धत्थमुणी आगच्छंतो दिट्ठो। सुकोसलो तमजाणंतो पुच्छेइ- माया! एसो को अत्थि? जयावई कोहेण भणइ- एसो कोवि दरिद्दो आगच्छइ। माये! ण खलु अयं दरिद्दो सव्वुत्तमलक्खणेहि संजुत्तादो त्ति सुकोसलेण वुत्तं। तदा सुणंदाधत्ती सेट्ठाणिं कहेदि- णियकुलस्स सामिणो परममुणिराजाय इणं वयणं ण सोहदि। तुसिणीयेण चिट्ठ त्ति अक्खेहिं इंगिदं करिय झत्ति सा राणी धाएण सह गच्छइ। 'अहं वंचिदो मि' त्ति सुकोसलो चिंतेइ। तदा सूवकारेण वुत्तं- भोयणवेला संजादा त्ति भोयणं कादव्वं। तदणंतरं अंबाए धत्तीए भज्जाहिं य कमेण कहिदं तहा वि तेण भोयणं ण कदं। सुकोसलो कहेदि- 'तं उत्तमपुरिसविसये सच्चं जाणिय खलु भोयणं करामि ण अण्णहा।' तदो सुणंदा सव्वं जहत्थं कहेदि। सच्चं सुणिय तक्कालं सुकोसलो णियभज्जाए गब्भट्ठिदं पुत्तं सेट्ठपदेण बंधिय सिद्धत्थमुणिसमीवं मुणी जादो। जयावई णिरंतरं पइपुत्तवियोगजणिदेण अट्टज्झाणेण विलवंती मुआ। मगहदेसे मोग्गिल्लगिरिम्मि य वग्घी जादा। तत्थ तिहिं पुत्तेहिं सह सा सव्वत्थ विहरदि। तत्थेव ते दो मुणी विहरमाणा चउमासस्स उववासेण जोगं धरिय ट्ठिदा। जोगसमत्तीए दोण्णि मुणिराया चरियाए उट्ठिदा। पहे गच्छंता वग्घीए ते विलोइदा। सहसा समक्खं आगंतूण ताए तिपुत्तेहिं सह कमेण ते हणिय भक्खिदा। मुणिराया अप्पसमाहिबलेण सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु उववण्णा। सुकोसलमुणिस्स हत्थस्स चिण्हं देक्खिय वग्घीअ जाइंभरणं संजादं। तेण अप्पणिंदणं कुणमाणा पच्छातावेण संसारं णिंदंती 'सगपुत्तं मए भक्खिदं' त्ति तिव्वाणुसयं चित्ते धरंती सयलसंणासेण मरिय सोहम्मसग्गे गदा। सच्चमेव वुत्तं-

मोग्गिल्लगिरिम्मि य सुकुसलो वि सिद्धत्थदइयभयवंतो।
वग्घीए वि खज्जंतो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥ भ.आ. १५४॥

❑ ❑ ❑

(२३) सुकौशल मुनि की कथा

राजा प्रजापाल अयोध्या नगरी में प्रजा का पालन करते हुए रहते थे। वहीं पर एक प्रधान सेठ सिद्धार्थ अपनी ३२ रानियों के साथ सुख से निवास करते थे। सेठ के कोई भी पुत्र नहीं था। इस कारण से जयावती प्रिय रानी पुत्र की प्राप्ति के लिए यक्षों की पूजा करती थी। एक बार दिव्य ज्ञानी मुनि ने रानी को कहा– पुत्री! तुम कुदेवों की भक्ति छोड़कर के जिनधर्म में ही निश्चल हो जाओ जिससे कि ७ दिन के अन्दर तुम्हें गर्भ की विभूति प्राप्त होगी। वह मुनि महाराज के वचनों से संतुष्ट होकर के जिनधर्म में दृढ़भूत हो गयी। कुछ दिनों के बाद उस रानी को सुकौशल नाम का पुत्र हुआ। पुत्र का मुख देखकर के सेठ नयनधर मुनि महाराज के समीप जाकर मुनि हो गया। मुझ बाल पुत्री को छोड़कर के यह सिद्धार्थ मुनि हो गये है, ऐसा चिन्तन करके वह जयावती अत्यन्त क्रुद्ध होती है। क्या मुनिराज को इस समय दीक्षा प्रदान करना योग्य था? इस प्रकार तर्कणा करके उसने क्रोध से अपने घर में मुनियों का प्रवेश निषेध कर दिया। धीरे-धीरे सुकौशल बड़ा हुआ, ३२ स्त्रियों के साथ उसका विवाह हुआ और सभी इन्द्रिय सुखों का वह भोग करने लगा।

एक बार महल की छत पर माता, धाय और सुकौशल अपनी स्त्रियों के साथ बैठे हुए नगर की शोभा को देख रहे थे। उसी समय पर दूर से विहार करते हुए चर्या के लिए सिद्धार्थ मुनि आते हुए दिखाई दिये। सुकौशल उनको नहीं जानता हुआ पूछता है, माँ यह कौन है?जयावती क्रोध से कहती है कि यह कोई भी दरिद्र आ रहा है। माँ! यह कोई दरिद्र नहीं हो सकता है क्योंकि यह कोई भी उत्तम लक्षणों के से संयुक्त है। इस प्रकार सुकौशल ने कहा। तब सुनन्दा नाम की धाय सेठानी को कहती है। अपने कुल के स्वामी इन परम मुनिराज के लिए ऐसे वचन शोभा नहीं देते हैं। तू चुप बैठ, इस प्रकार से आँखों से इशारा करके शीघ्र ही वह रानी धाय के साथ चली गई। मैं ठगा गया हूँ। इस प्रकार सुकौशल चिन्ता करता है। तब रसोइया कहता है भोजन की बेला हो गई हैं भोजन कर लेना चाहिए। तदनन्तर माँ ने, धाय ने और उसकी स्त्रियों ने क्रम से सुकौशल को भोजन करने के लिए कहा फिर भी उसने भोजन नहीं किया। सुकौशल ने कहा– उस उत्तम पुरुष के विषय में सत्य जानकर ही मैं भोजन करूँगा, अन्यथा नहीं करूँगा। तब सुनन्दा सब कुछ यथार्थ कह देती है। सत्य सुनकर के तत्काल ही सुकौशल अपनी भार्या के गर्भ में स्थित पुत्र को सेठ पद से अलंकृत करके सिद्धार्थ मुनि के समीप जाकर मुनि हो गया। जयावती निरन्तर पति व पुत्र के वियोग से उत्पन्न हुए आर्तध्यान के द्वारा विलाप करती हुई मरण को प्राप्त हुई। मगध देश में मौद्गिल्य पर्वत पर वह व्याघ्री हुई। वहीं पर वह तीनों पुत्रों के साथ सर्वत्र विहार करती रहती है। उसी स्थान पर वे दोनों मुनिराज विहार करते हुए चातुर्मास के उपवास के साथ योग धारण करके स्थित हो गये। योग समाप्त होने पर दोनों मुनिराज आहार चर्या के लिए प्रस्थान किये। रास्ते में जाते हुए व्याघ्री ने उन दोनों को देख लिया। सहसा समक्ष आकर के उस व्याघ्री ने अपने तीनों पुत्रों के साथ क्रम से उनको मारकर खाया। मुनिराज आत्म समाधि के बल से सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में उत्पन्न हुए। सुकौशल मुनि के हाथ के चिह्न को देखकर व्याघ्री को जातिस्मरण हुआ। जिससे अपनी निन्दा करते हुए पश्चात्ताप के द्वारा संसार की निन्दा करती हुई कि 'मैंने अपने ही पुत्र का भक्षण कर लिया'। इस प्रकार तीव्र पश्चात्ताप को अपने चित्त में धरण करती हुई सकल संन्यास से मरण करके वह सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुई। सत्य ही कहा है।

''मौद्गिल्य नामक पर्वत पर सिद्धार्थ राजा के पुत्र सुकौशल नाम के मुनिराज को जो पूर्व जन्म में उनकी माता हुई थी ऐसी व्याघ्री ने भक्षण किया तो भी उन्होंने शुभ ध्यान से रत्नत्रय की प्राप्ति की अर्थात् वे श्रेष्ठ फल को प्राप्त हुए।'' (भ.आ.१५४)

❑ ❑ ❑

(२४) चाणक्कमुणिकहा

पाडलिपुत्तणयरस्स राया णंदो कावि-सुबंधु-सकटाल-मंतीहि सह रज्जपालणं कुणित्था। रायपुरोहिदस्स कपिलस्स देविलाभज्जाए चाणक्कपुत्तोत्थि। एगदा काविमंती णंदराइणं कहेदि- राय! णियडवट्टिणो राइणो रज्जस्सुवरि समागच्छंति। राया भणइ- धणं दाऊण ते वारिदव्वा। काविणा जहाजोग्गं धणं दाऊण ते वारिदा। णंदेण एगदा भंडागारस्स धणविसए पुट्ठं। तेण वुत्तं- काविणा सयलधणं णियडवट्टिराईणं पदिण्णं। णंदेण कुद्धेण परिवारसहिदो कावी अंधकूवे णिवादिदा। तत्थ संकडद्दारे एगेगसरावे भोयणं अप्पजलं चम्मपत्ते य वरत्तबंधेण दाइज्जइ। काविणा भणिदं- कुडुम्बसहिदं णंदं जो विणासेइ सो इणं भोयणं भुंजेउ। सव्वेहि कहिदं- अमुस्स कज्जस्स तुमं खु समत्थोसि। तदो तत्थेव बिलं णिम्माविय भोयणं भुजंतेण तिण्णि वासा णिग्गदा। सयला परिवारजणा मुआ। एगदा णियडवट्टिराईहिं पुणो वि णंदो खोहं गदो। राया कविं पुणु सुमरेइ। कवी पुणो मंतिपदे पइट्ठाविदो।

एगदा णंदस्स विणासट्ठं कावी अरण्णे कं वि पुरिसं गवेसेदि। तेण तत्थ दिट्ठं- 'बहुछत्तेहि सह एगो पुरिसो दब्भसूइं खणइ।' एवं दिट्ठूण सो पुच्छइ- किं कुणसि? तेण वुत्तं- दब्भसूइं खणामि। केण कारणेण? अमुणा विद्धो हं तेण। काविणा वुत्तं- तट्ठाणं पूरसु खमसु य। चाणक्को बोल्लइ- 'ण, ण ताव खणामु जाव मूलं ण उद्धरेमु। ताव बाहेमु जाव सिरं ण भंजेमु।' एवं सुणिय कावी चिंतइ- णंदवंसस्स णासट्ठं एसो खलु जोग्गपुरिसोत्थि। कावी अवसरं पडीच्छइ।

एगदा चाणक्कस्स भज्जा जसस्सई कहेदि- पिअ! णंदो कपिलधेणुं बम्हणाणं देदि, तुमए वि घेत्तव्वं। चाणक्को कहेदि- गहिस्सामि। एगदा सहस्सधेणूणं पदाणाय बम्हणा आहूदा। चाणक्को वि आगदो। काविणा चाणक्को अग्गासणे संठाविदो। तेण सह अण्णाणि बहु आसणाणि वि संलग्गाणि। किंचिकालंतरं कावी कहेदि- णंदरायस्स आदेसोत्थि अण्णे बम्हणा समागदा ताणं आसणं पढमं दादव्वं। तेण सो अण्णासणे चिट्ठइ। तत्तो वि उट्ठिदूण अण्णासणं चाणक्कस्स दिण्णं। एवं किच्चा सव्वासणेहि सो वंचिदो। कावी भणइ- अहं किं करेमु णंदरायस्स विवेगो णत्थि। राया आदिसइ- इणं आसणं वि छंडेदव्वं, तुमए एदम्हादो ठाणादो अण्णत्थ गंतव्वं। एवं भणिय चाणक्कस्स गलं गहिय बाहिरं सेवगेहि सो णिग्घाडिदो।

(२४) चाणक्य मुनि की कथा

पाटलिपुत्र नगर के राजा नन्द थे। जो अपने तीन मन्त्री कावि, सुबन्धु और शकटाल के साथ में राज्य का पालन करते थे। राजा के पुरोहित कपिल की देविला नाम की स्त्री से चाणक्य नाम का पुत्र था। एक बार कावि मन्त्री ने नन्द राजा को कहा– राजन्! निकटवर्ती राजा लोग राज्य के ऊपर चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं। राजा कहता है– धन देकर के उन्हें रोक देना चाहिए। कावि ने यथायोग्य धन देकर के उन्हें रोक दिया। नन्द राजा ने एक बार अपने भाण्डागरिक को धन के विषय में पूछा? उसने कहा– कवि ने सारा धन निकटवर्ती राजाओं को प्रदान कर दिया है। नन्द ने क्रुद्ध होकर के परिवार के साथ कावि को एक अन्ध कूप में डाल दिया। वहाँ पर संकट द्वारा पर एक-एक सकोरा में भोजन और थोड़ा सा जल चमड़े के थैले में रस्सी बाँधकर के प्रदान किया जाता था। कावि ने कहा– कुटुम्ब सहित नन्द का जो विनाश करेगा। वह यह भोजन करे। सबने कहा– इस कार्य को तुम ही करने में समर्थ हो। तब उसने वहीं एक बिल को बनाकर के भोजन करते हुए तीन वर्ष निकाल दिये। समस्त परिवार जन मरण को प्राप्त हुए। एक बार निकटवर्ती राजाओं के द्वारा पुनः नन्द राजा को क्षोभ उत्पन्न किया गया। राजा कवि का पुनः स्मरण करता है। राजा कावि को पुनः मंत्री पद पर प्रतिष्ठापित करता है।

एक बार नन्द का विनाश करने के कावि अरण्य में किसी पुरुष की गवेषणा कर रहा था। उसने वहाँ देखा बहुत छात्रों के साथ में एक पुरुष दर्भ सूची (मुलायम घास) को खोद रहा है। इस प्रकार देखकर के वह पूछता है– तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा– मैं इस दर्भसूची को खोद रहा हूँ। किस कारण ये खोद रहे हो? क्योंकि मैं इसके द्वारा बिध गया हूँ। कवि ने कहा उस स्थान को भर दो और क्षमा धरण करो। चाणक्य ने कहा, नहीं-नहीं मैं इसको तब तक खोदूँगा जब तक कि मूल जड़ के साथ यह ना उखाड़ दूँ तब तक बाधा पहुँचाऊंगा जब तक कि इसका सिर ना कट जाये। इस प्रकार सुनकर के कावि विचार करता है कि नन्दवंश का नाश करने के लिए यह योग्य पुरुष हैं। कावि अवसर की प्रतीक्षा करता है।

एक बार चाणक्य की पत्नी यशस्वती कहती है– प्रिय! नन्द राजा कपिल गायों को (भूरी गायों को) ब्राह्मण के लिए दे रहा है तुम्हें भी ग्रहण कर लेना चाहिए। चाणक्य कहता है– कर लूँगा। एक बार राजा के द्वारा हजार गायों को प्रदान करने के लिए ब्राह्मण बुलाये गये। चाणक्य भी आया। कावि ने चाणक्य को अग्र आसन पर बैठा दिया। उसके साथ अन्य बहुत से आसन भी लगे हुए थे। कुछ काल के बाद कावि कहता है– नन्द राजा का आदेश है कि अन्य ब्राह्मण आए हैं उनके लिए आसन पहले प्रदान किया जाये। इसलिए वह अन्य आसन पर बैठ गया। वहाँ से उठाकर भी अन्य आसन चाणक्य को दिया गया। इस प्रकार करके सभी आसनों से वह चाणक्य वंचित हो गया। कावि कहता है– मैं क्या करूँ? नन्द राजा को विवेक नहीं है। राजा आदेश देता है कि इस आसन को भी छोड़ देना चाहिए और तुम्हें इस स्थान से अन्यत्र चले जाना चाहिए। इस प्रकार कहकर चाणक्य का गला पकड़ करके बाहर सेवकों के द्वारा वह निकाल दिया जाता है।

तदा चाणक्को संकप्पइ– 'अहं णंदवंसस्स समूलविणासं करिस्सं। जो णंदस्स रज्जं इच्छइ सो मे पुट्ठे लग्गदु त्ति कहंतो सो बहि णिग्गदो। एगो पुरिसो तस्स पुट्ठे लग्गदि। तस्स साहाएण सो णियडवट्टिराईसुं मिलिदो। सणियं सणियं धणं पदाइय णंदस्स मंतीणं जोद्धाणं च तेण भेदो कदो। एगदिवसे असहाओ णंदो हदो। चाणक्केण चंदगुत्तमोरियं राजसिंहासणे ठविय बहुकालं रज्जं कदं। पच्छा महीधरमुणिसमीवं धम्मसवणेण सो वेरग्गं गदो। दियंबरमुणी होऊण चाणक्को पंचसयसिस्साणं गुरू होदि। बहुकालं विहारं करिय दक्खिणदिसाए वणवासदेसस्स कोंचपुरे समागदो। तत्थ एगम्मि गोट्ठम्मि पादोवयाणमरणेण ट्ठिदं। णंदस्स मरणोवरंतं तस्स सुबंधुणामा मंती चाणक्के कोहं वहंतो कोंचपुरीए सुमित्तरायं समया समागच्छइ। सुमित्तराया मुणीणं वंदणं किच्चा णिवत्तेइ पच्छा सुबंधू चाणक्कं परिलक्खिय पुव्ववेरेण तत्थ गच्छइ। सो तत्थ करीसग्गिं दाऊण आगदो। तदग्गिजालाए उवसग्गेण ते मुणिणो दड्ढा। समाहिमरणेण सव्वे सिद्धिं पत्ता। वुत्तं च–

गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि।
डज्झंतो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥ भ.आ. ५५६॥

❑ ❑ ❑

संजोगो सव्वाणं आउगकम्मस्स परवसेणेव।
दिढणेहबधणं जो छिण्णह सो दुल्लहो लोगे॥
—अनासक्तयोगी ४/१५

तब चाणक्य संकल्प करता है कि मैं नन्द वंश का समूल विनाश करूँगा। जो नन्द के राज्य को चाहता है वह मेरे पीछे आये। ऐसा कहता हुआ वह बाहर निकल गया। एक पुरुष उसके पीछे लग जाता है। उसकी सहायता से वह निकटवर्ती राजाओं से मिल गया। धीरे-धीरे धन प्रदान करके नन्द के मन्त्री और योद्धाओं का उसने भेद कर दिया। एक दिन नन्द असहाय होकर के मारा गया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसिंहासन पर स्थापित करके बहुत काल तक राज्य किया। बाद में महीधर मुनि के समीप धर्म श्रमण करने से वह वैराग्य को प्राप्त हुआ। दिगम्बर मुनि होकर के चाणक्य ५०० शिष्यों का गुरू हुआ। बहुत काल तक विहार करके दक्षिण दिशा में वनवास देश के क्रौन्च नगर में आया। वहाँ एक गोष्ठ में पादोपयान मरण धरण किया। नन्द के मरण के उपरान्त उसका सुबन्धु नाम का मन्त्री चाणक्य पर क्रोध धारण करता हुआ क्रौन्च पुरी के सुमित्र राजा के पास आकर रुक गया था। सुमित्र राजा मुनिराजों की वंदना करके वापस लौटे। बाद में सुबन्धु चाणक्य को देखकर पूर्व वैर के साथ वहाँ गया। वह वहाँ कण्डे की आग जलाकर के आ गया। उस अग्नि की ज्वाला में उपसर्ग के साथ में वह मुनि महाराज जल गये, और समाधिमरण से सभी सिद्धि को प्राप्त हुए। कहा भी है–

''गोष्ठ में चाणक्य नामक मुनि ने प्रयोपवेशन धारण किया। सुबन्धु नामक राजमन्त्री उसका वैरी था उसने गोमय कण्डों की राशि में चाणक्य मुनि को आग लगाकर जलाया तो भी उन्होंने रत्नत्रय की आराधना का त्याग नहीं किया। वे उत्तमार्थ को प्राप्त हुए।''(भ.आ. ५५६)

❑ ❑ ❑

आयु कर्म की परतन्त्रता से ही सभी जीवों को संयोग होता है।
जो पुरुष इस दृढ़ स्नेह के बंधन को छोड़ता है वह लोक में दुर्लभ है॥१५॥ अ.यो.

सोलहकारण भावना जीव की पुरुषार्थशीलता का द्योतक हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ भावना पर आधारित हैं। किसी भी पुरुषार्थ को करने से पहले जो चिन्तन, मनन और तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है वही भावना है। अरिहन्त तीर्थंकरों के द्वारा आगे बढ़ने वाला 'जिनशासन' उस जीव की पूर्व जन्म में भाई हुई तीव्र भावनाओं का फल है। विशिष्ट पुण्य और पाप प्रकृति का बन्ध जीव की विशिष्ट भावनाओं से होता है सामान्य भावों से नहीं। भावना शुभ-अशुभ दोनों प्रकार की होती है। अत्यन्त शुभ भावना का फल तीर्थंकर प्रकृति का बंध कहा है।

सिद्धान्त की दृष्टि से इस तीर्थंकर प्रकृति को बांधने वाला जीव असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीव तक होते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान के संख्यात बहुभाग के व्यतीत हो जाने पर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध व्युच्छिन्न हो जाता है।

इस तीर्थंकर कर्म प्रकृति के बन्ध के लिए बाह्य सहयोगी कारण केवली या श्रुतकेवली का पादमूल है। इसके अतिरिक्त अन्तरङ्ग कारण सोलहकारण भावनाएँ हैं। षट्खण्डागम सूत्र में कहा है कि—

'तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयर णामगोदकम्मं।'

— ध.पु. ८ सूत्र ४०

अर्थात् वहाँ इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र का बंध करते हैं।

द्वितीय खण्ड
सोलहकारण कथाएँ

प्राकृत हमारी दादी माँ है, **संस्कृत** हमारा पितामह है
हिन्दी हमारी माँ है, **अपभ्रंश** हमारा पिता है
अंग्रेजी हमारी पत्नी है।
—मुनि प्रणम्यसागर

(१) दंसणविसोहिभावणा

जिणिंददेवेहि उवदिट्ठे णिग्गंथमोक्खमग्गे रुइभवणं णिस्संकियादियट्ठंगपालणं दंसणविसोही णाम। णिग्गंथरूवा दियंबरा खलु मोक्खमग्गो सक्खियं दंसणं अत्थि। तेसिं गुणाणुरायो तप्पत्तीए उस्सुगुत्तं य अप्पणो सम्मत्तगुणं विसोहेदि। जदो मोक्खमग्गस्स संबंधो अप्पणो रयणत्तयगुणेहि सह होदि तदो अप्पतच्चरूई वड्ढेदि। णिस्संकादिगुणपालणेण सम्मत्तं उववज्जदि। गिहीदसम्मत्तस्स विसोही वि णिरइयारट्ठंगपालणेण तग्गुणचिंतणेण य होदि। तित्थयरकेवलिणा उवदिट्ठे पवयणे 'मोक्खो मोक्खमग्गो एसो अत्थि ण वा' इदि संकाए अभावो णिस्संकियंगोत्थि। जो मोक्खमग्गे णिस्संकियो होदि तस्स संसारसुहे पंचिंदियसुहे वंछा ण जायदि तेण विसयसुहाणाकंखा णाम णिक्कंखियंगो। जस्स हियए रयणत्तयगुणेसु अणुरायो सो रयणत्तयधारीणं मुणीणं घिणादिट्ठीए कहं पासेदि तेण गुणेसु पीदी मलिणदेहे दुगुंछाए अभावो खलु णिव्विदिगिंछा णाम तदियंगो। मिच्छामदाणुरत्ता णयविण्णाणसुण्णा कयाचि अज्झप्पेयंतपवयणेण कयाचि मंततंतचमक्कारेहिं कयाचि कामभोगदेहपोसणपमुहमणरंजणो-वदेसेहि खाइपूयालाहेण सम्मदं इच्छंति तं सव्वं पेक्खिऊण वि मूढदाए अभावो अमूढदिट्ठी णाम चउत्थंगो। मोक्खमग्गोवओगि णाणचारित्तधरण-सत्तीए अभावादो केहि जणेहि अण्णाणेण अचारित्तेण य दूसणे जादे वि 'मग्गो दु सुद्धो' त्ति वियारिय तेसिं दोसाणं आच्छादणं उवगूहणंगो पंचमो। धम्मबुद्धीए उवदेसादिपयारेण मग्गे पुणो उवट्ठावणं ट्ठिदिकरणंगो छट्ठो। धम्मे धम्मिगेसु य धेणुवच्छोव्व सहजणेहकरणं वच्छलत्तंगो सत्तमो। दाणतवजिणपूयाणाणादिविहिणा जिणधम्मस्स पहावपयासणं पहावणा णाम अट्ठमो अंगो। एदेसु अट्ठंगेसु पसिद्धाणं कहाचिंतणं उवदेसणं च सम्मत्तं विसोहेदि। णिग्गंथाणं विहारकाले सिद्धखेत्त-अइसयखेत्तेसु अपुव्वजिणबिंबाणं दंसणेण भत्तिविसेसकरणेण य सम्मत्त-विसोही होदि। सच्चमेव-

सम्मेदादिगिरीसु केवलिणं संति सिद्धठाणाणि।
वंदणकरणं तेसिं सम्मत्तविसोहीए हेदू॥ ति.भा. ६
पत्ताणं व विहारे गामे खेत्ते जिणिंदबिंबाणं।
भत्तीए थुदिकरणं सम्मत्तविसोहीए हेदू॥ ति.भा. ७

एदेण दंसणविसोहिपहावेण हि राया सेढिगो सत्तमणिरयाउयं तेत्तीससायरं हीयमाणो पढमपुढवीए चउरासिसहस्सवासमेत्तं कुणदि तित्थयर-णामकम्मपयडिं वि बंधेदि। सव्वे तित्थयरा दंसणविसोहिभावणाकारणेण हि धम्मतित्थं पवट्टंति।

❑ ❑ ❑

(१) दर्शनविशुद्धि भावना

जिनेन्द्र देव के द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ मोक्ष मार्ग में रुचि होना और निःशंकित आदि अष्ट अंगों का पालन होना दर्शनविशुद्धि है। निर्ग्रन्थ रूप दिगम्बर ही निश्चय से मोक्ष का मार्ग है और वही साक्षात् दर्शन है। उनके गुणों में और उनके गुणों की प्राप्ति के लिए उत्सुकता होना आत्मा के सम्यक्त्व गुण को विशुद्ध करता है। चूँकि मोक्षमार्ग का संबन्ध आत्मा के रत्नत्रय गुणों के साथ होता है इसलिए आत्मतत्त्व की रुचि बढ़ती है। निःशंकित आदि गुणों के पालन से सम्यक्त्व की उत्पत्ति भी होती है। ग्रहण किये हुए सम्यग्दर्शन की विशुद्धि भी निरतिचार आठ अंगों के पालन करने से और उन गुणों का चिन्तन करने से होती है, ''तीर्थंकर केवली के द्वारा कहे हुए प्रवचन में मोक्ष और मोक्ष का मार्ग यह है अथवा नहीं है'' इस प्रकार की शंका का अभाव होना निःशंकित अंग है। जो मोक्ष के मार्ग में निःशंकित होता है उसको संसार सुख में और पंचेन्द्रिय के सुखों में वांछा उत्पन्न नहीं होती है जिससे विषय सुख में अनाकांक्षा होने का नाम निःकांक्षित अंग है जिसके हृदय में रत्नत्रय के गुणों में अनुराग होता है वह रत्नत्रयधारी मुनिराजों को घृणा की दृष्टि से कैसे देख सकता है? जिससे उनके गुणों में प्रीति होती है और मलिन देह मैं भी घृणा का अभाव होता है यही निर्विचिकित्सा नाम का तृतीय अंग है। मिथ्यामतो में अनुरक्त नय और विज्ञान से शून्य कदाचित् अध्यात्म एकान्त के प्रवचन के द्वारा, कदाचित् मन्त्र तन्त्र आदि चमत्कारों के द्वारा कदाचित् काम भोग देह के पोषण की प्रमुखता वाले मनोरंजन उपदेशों के द्वारा ख्याति पूजा लाभ के द्वारा जो जन समूह को इकट्ठा करने की इच्छा करता है उस सबको देखकर भी मूढ़ता का अभाव होना अमूढ़दृष्टि नाम का चतुर्थ अंग है। मोक्षमार्गोपयोगी ज्ञान चारित्र को धारण करने की शक्ति के अभाव से कितने ही जनों के द्वारा अज्ञान से अथवा अचारित्र से मार्ग में दूषण दिये जाने पर भी 'मार्ग तो शुद्ध है' इस प्रकार का विचार करके उन दोषों का आच्छादन करना उपगूहन नाम का पांचवां अंग है। धर्म बुद्धि से उपदेश आदि के द्वारा मार्ग में पुनः उपस्थापन करना स्थितिकरण नाम का छठवाँ अंग है। धर्म और धार्मिकों में गोवत्स के समान सहज स्नेह करना वत्सलत्व नाम का सातवाँ अंग है। दान,तप,जिनपूजा,ज्ञान आदि के द्वारा जिनधर्म प्रभाव फैलाना प्रभावना नामक आठवाँ अंग है। इन आठ अंगों में प्रसिद्ध व्यक्तियों की कथाओं का चिन्तन करना,उपदेश देना भी सम्यक्त्व की विशुद्धि करता है। निर्ग्रन्थों के लिए विहार करते समय सिद्धक्षेत्र,अतिशय क्षेत्रों में अपूर्व जिनबिम्बों के दर्शन और उनकी भक्ति विशेष करने से भी सम्यक्त्व की विशुद्धि होती है। सत्य ही है–

''सम्मेदाचल पर्वतों पर केवली भगवान के जो सिद्ध स्थान पर बने हुए हैं उनकी वन्दना करना सम्यक्त्व की विशुद्धि का हेतु है। विहार में प्राप्त होने वाले ग्राम और क्षेत्रों में जो जिनेन्द्र भगवान के बिम्बों की भक्ति के साथ में स्तुति की जाती है वह भी सम्यक्त्व की विशुद्धि का हेतु है।'' (तीर्थंकर भावना)

इस प्रकार दर्शनविशुद्धि के प्रभाव से ही राजा श्रेणिक सातवें नरक की आयु को तैंतीस सागर तक कम करता हुआ प्रथम पृथ्वी की ८४००० वर्ष की आयु मात्र कर देता है और तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का भी बन्ध कर लेता है। सभी तीर्थंकर दर्शनविशुद्धि भावना के कारण से ही धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करते हैं। ❑ ❑ ❑

(२) विणयसंपण्णदा

मोक्खमग्गस्स साहणभूदेसु सम्मद्दंसणादिगुणेसु तग्गुणधारगपुरिसेसु आदरो विणओ णाम। तस्स दंसणविणओ णाणविणओ चारित्तविणओ तवविणओ उवयारविणओ चेदि पंचभेदा होंति। तत्थ जिणिंददेवकहिद-सुहुमतच्चेसु संकादिणिवारणं जिणधम्मे पीदिधारणं वीयरायदेवधम्मगुरुसुं अचलसद्दहणं दंसणविणओ।

सज्झायाराट्ठायारोभयायारकालायारोवहाणायाराणिण्हवायारबहुमाणा-यारविणयायारभेएण अट्ठविहणाणायारेण सिद्धंतसुत्तज्झप्पादिगंथाणं पढणं पाढणं णाणवुड्ढिकारणेण चित्तविसोहिकारणेण य णाणविणओ। वदसमिदि-गुत्तिपालणे पमादस्स परिहरणं कसायिंदियचोरेहि सव्वकालं अप्पणो रक्खणं च चारित्तविणओ। बारसविहतवेसु सया आदरो तवस्सिजणेसु विणओ भत्ती य तवोविणओ। काइयवाचियमाणसियभेएण उवयारविणओ तिविहो। तत्थ काइयविणओ सत्तविहो। तं जहा- १. गुरुसमक्खं अब्भुट्ठाणं, २. पणामकरणं, ३. आसणपदाणं, ४. पोत्थयदाणं, ५. सिद्धादिभत्तीए वंदणाकरणं, ६. तदागमणे णियासणस्स परिहरणं, ७. तग्गमणे किंचि दूरं अणुव्वजणं। वाचियविणओ चउव्विहो। तं जहा- धम्मसहिदवयणं हिदभासणं, अप्पसद्द-बहुअत्थगब्भिवयणं मिदभासणं, कारणसहिदवयणं परिमिदभासणं, आगमाणुसारिवयणं अणुवीइभासणं चेदि। माणसियविणओ दुविहो। तं जहा- पापासवकारणेहि मणोरोहणं, धम्मज्झाणे मणस्स पवट्टणं चेदि। एवंविहविणओ रत्तीए वि अहिये साहुम्मि दिक्खागुरुम्मि विज्जागुरुम्मि तवसुदेहिं अहियसाहुम्मि य कादव्वो। तहेव दिक्खाए तवोकम्मेण सुदणाणेण य हीणे वि जणे जहाजोग्गं धम्मादिदेसणेण णेहेण य कादव्वो। विणयरहिदस्स सव्वं तवोकम्मं सत्थपढणं च णिरत्थयं होदि। वुत्तं च-

(२) विनय सम्पन्नता

मोक्षमार्ग के साधनभूत सम्यग्दर्शन आदि गुणों में और उन गुणों को धारण करने वाले पुरुषों में आदर होना विनय है। उस विनय के दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तप विनय और उपचार विनय इस तरह ५ भेद होते हैं। उसमें जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे हुए सूक्ष्म तत्त्वों में शंका आदि नहीं करना ,जिनधर्म में प्रीति धारण करना, वीतराग देव,धर्म और गुरुओं में अचल श्रद्धान करना **दर्शनविनय** है। शब्दाचार, अर्थाचार, उभयाचार, कलाचार उपधानाचार, अनिह्नवाचार, बहुमानाचार, विनयाचार के भेद से आठ प्रकार के ज्ञानाचार के द्वारा सिद्धान्त, सूत्र और अध्यात्म आदि ग्रन्थों का पढ़ना तथा पढ़ाना ज्ञान की वृद्धि का कारण होने से और चित्त की विशुद्धि का कारण होने से **ज्ञानविनय** है। व्रत ,समिति ,गुप्ति पालन में प्रमाद का परिहार करना,कषाय और इन्द्रिय चोरों के द्वारा सर्वकाल अपनी आत्मा की रक्षा करना **चारित्रविनय** है। बारह प्रकार के तपों में सदा आदर होना तपस्वी जनों में विनय और भक्ति होना **तपविनय** है।

कायिक,वाचिक और मानसिक भेद से उपचार विनय तीन प्रकार की होती है। उसमें

(१) कायिक विनय सात प्रकार की है—

१. गुरू के समक्ष खड़े हो जाना।

२. गुरू को प्रणाम करना।

३. गुरू को आसन प्रदान करना।

४. गुरू को पुस्तक आदि प्रदान करना।

५. सिद्ध आदि भक्ति के द्वारा वन्दना करना।

६. उनके आगमन पर अपने आसन को छोड़ देना।

७. उनके चले जाने पर कुछ दूर तक उनके पीछे–पीछे चलना।

(२) वाचनिक विनय चार प्रकार की होती है—

१. धर्म सहित वचन बोलना हितभाषण है।

२. अल्प शब्दों के साथ बहुत अर्थ से भरे हुए वचनों का होना मित भाषण है।

३. कारण सहित वचन होना परमित भाषण।

४. आगम के अनुसार वचन बोलना ये अनुवीचि भाषण है।

(३) मानसिक विनय दो प्रकार की है-

१.पाप आस्रव के कारणों से मन को रोकना और २. धर्मध्यान में मन की प्रवृत्ति करना यह दो प्रकार की मानसिक विनय है।

विणएण विप्पहीणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।
विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्लाणं॥
विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं।
विणएणाराहिज्जदि आइरिओ सव्वसंघो य॥मूला.२११,२१२

जेसिं रयणत्तयं धम्मभावणा य अत्थि तेसिं विणअं सम्मादिट्ठी जीवो णियमेण करेदि जदो सम्मादिट्ठिजीवे अट्ठविहमदाभावेण विणओ सहजो उब्भवदि। सो खलु पलोहणेण चमक्कारदंसणेण य विणा विणयदि। विणओ अप्पणो उत्थाणकरणगुणोत्थि। वि- विसेसरूवेण णयो णेइ मोक्खमग्गे सो विणओ। अहवा वि- विसेसो णओ णीई विणओ लोइयालोइयसव्व-कज्जसिद्धियरगुणे। सच्चमेव-

जेसिं वि य रयणत्तं तेसिं णिच्चं य भावणा धम्मे।
जे णिरवेक्खालोए तेसिं चरणेसु लग्गदे दिट्ठी॥ ति.भा.॥

❑ ❑ ❑

गमणपहे मेलंता जिणालया साहवो य जिणतित्थं।
जो वंदिऊण गच्छदि सो खलु पुरिसो विणयजुत्तो॥

हियए जस्स दु विणओ सो वसंकरेदि सव्वजणहियअं।
हत्थे चिंतामणियं देवा वि य सेवगा तस्स॥
—अनासक्तयोगी२/१६-१७

इस प्रकार की विनय एक रात्रि भी बड़े साधु में, दीक्षा गुरु में, विद्या गुरु में तप और श्रुत ज्ञान से अधिक साधु में करनी चाहिए। इसी प्रकार तप और श्रुतज्ञान से हीन भी व्यक्ति में यथायोग्य धर्म आदि की देशना के द्वारा और स्नेह के द्वारा विनय करना चाहिए । विनय रहित का समस्त तप कर्म और शास्त्र का पढ़ना निरर्थक होता है। कहा भी है–''**विनय से रहित व्यक्ति की सम्पूर्ण शिक्षा निरर्थक है, शिक्षा का फल विनय है, विनय का फल समस्त कल्याणों की प्राप्ति होना है। विनय मोक्ष का द्वार है, विनय से ही संयम, तप और ज्ञान है। विनय के द्वारा ही आचार्य और सर्व संघ की आराधना की जाती है।**''(मूला. २११,२१२) जिनके पास रत्नत्रय और धर्म की भावना होती है उनकी विनय सम्यग्दृष्टि जीव नियम से करता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव में आठ प्रकार के मदों के अभाव से विनय सहज ही उत्पन्न होती है।

वह सम्यग्दृष्टि जीव किसी प्रलोभन से या चमत्कार आदि को देखने के बिना ही विनय करता है। विनय आत्मा का उत्थान करने वाला गुण है। वि यानि विशेष रूप से , नय अर्थात ले जाने वाला। जो मोक्षमार्ग पर विशेष रूप से आगे ले जाता है उसका नाम विनय है। अथवा विशेष, नय= नीति, ही विनय है। विनय ही लौकिक और अलौकिक सभी कार्यों की सिद्धी करने वाला गुण है। सत्य ही कहा है–

''जिनके पास रत्नत्रय है उनकी भावना धर्म में बनी रहती है। ओर जो लोक में निरपेक्ष होते है, उनके चरणों में हमेशा दृष्टि लगी रहती है।''(तित्थयर भावणा)

❑ ❑ ❑

गमनपथ पर मिलने वाले जिनालय, साधु और
जिनतीर्थों की जो वंदना करके आगे बढ़ता है
वह पुरुष विनय से युक्त होता है॥१६॥

जिसके हृदय में विनय है, वह समस्तजनों के हृदय को वश कर लेता है।
उसके हाथ में चिंतामणि है।
उस विनयवान जीव के सेवक देव भी होते हैं॥१७॥ अ.यो.

(३) सीलवदेसु अणइयारभावणा

अहिंसादीणि वदाणि। तेसिं परिपालणट्ठं कोहादिदुब्भावविवज्जणं सीलं। अहवा अहिंसादिवदाणं रक्खणट्ठं अण्णवदपालणं वि सीलं। चारित्तवियप्पा सीलवदाइं संति। तत्थ सयलचारित्तं पंचमहव्वरूवं। तप्परिपालणस्स पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ वि सीलो। अहवा अहिंसावय-पालणस्स सच्चादिवदपालणं वि सीलो। अहवा अट्ठावीसमूलगुणा वदाइं। तप्परिपालणट्ठं बारसविहतवस्स बावीसपरीसहाणं जओ य उत्तरगुणा सीलत्तेण वुच्चंति। तहेव सावयाणं पंच अहिंसादिअणुव्वयाइं। तिण्णि गुणव्वदाइं चत्तारि सिक्खावदाइं य सत्तसीलवदाइं भणिज्जंति। तेसिं अइयारा जहा आगमे भणिया ते जाणिय अणइयारेण पवट्टणं तित्थयरकम्मपयडिं बंधेइ। सीलवदाइं जदा सम्मत्तेण सह चिट्ठंति तदा हि सम्मचारित्ते अंतब्भवंति तदा हि तित्थयरणामकम्मस्स बंधकारणं होइ।

सीलवदाइं पालंतस्स मणो सुद्धो होइ परमट्ठकज्जसंलग्गादो। जदा कदा विसयवामोहेण मणसुद्धीए हाणी होइ तदा पढमो दोसो **अइकम्मो** जायेदि। तक्कारणेण पुणु सीलवदाणुल्लंघणेण मणस्स वट्टणं विदियो दोसो **वदिक्कमो** होदि। पुणु इंदियविसेएसु पवट्टणं तदियो दोसो **अइयारो** होदि। पुणु अइआसत्तिवसेण वदसीलाणं विणासो चउत्थो दोसो **अणायारो** होदि। तेण साहू सावगो य णिव्वियप्पभवणाय वदाइं गिण्हेदि। सगावासयादिकज्जेसु तस्स मणो ण खोहं जादि। रागादिकारणेण मणम्मि खोओ होदि ममत्तादि-परिणामसब्भावादो। तदो जो अक्खोहमणो सो णिरइयारवदं पालेदि। सच्चमेव-

जो णिव्वियप्पसाहू बाहिरकज्जेहिं होइ अक्खोहो।
समदालीणपसण्णो सीलवदे अणइचारो सो॥ ति.भा. २३॥

कोहादिकारणेण वदेसु दोसो सीलभंगो वुच्चदि। तेण तिरिक्खादि-कुच्छियगईए जीवो जम्मइ। एगो गुणणिही णामगो मुणिरायो पव्वदे चउमासस्स वरिसाजोगं धारेदि। सो खलु धीरवीरो चारणरिद्धिधारगो आसि। तेसिं पसंसा सव्वत्थ पसरेइ। जोगसमत्तीए सो आयासमग्गेण अण्णत्थ गच्छइ। तक्काले मिदुमईणामगो मुणी आहारट्ठं तण्णगरे जादि। णागरिया वियारंति सो एव मुणी एत्थ आगच्छइ तेण बहुपयारेण णाणाविहदव्वेहि थुदिकित्तिगाणेण य मुणिं पसंसंति। तं सुणिदूण वि मुणिणा मायाए ण किंचि सच्चं वुत्तं। तेण कारणेण सो मुणी कालं कादूण सग्गफलं भुंजिय पुणो आगंतूण तिलोयमंडणणामा हत्थी रावणस्स होदि। अदो भव्वजणा कोहमाणमायालोहादिकसाएहि वदेसु दूसणं ण दादव्वं।

❑ ❑ ❑

(३) शील व्रतों में अनतिचार भावना

अहिंसा आदि व्रत हैं। उनका परिपालन करने के लिए क्रोध आदि दुर्भावों से रहित होना शील है। अथवा अहिंसा आदि व्रतों की रक्षा करने के लिए अन्य व्रतों का पालन करना भी शील है। चारित्र के भेद शील व्रत होते हैं। उसमें सकल चरित्र तो पंचमहाव्रत रूप है। उसका परिपालन करने वाले मुनि महाराज के लिए पाँच समितियां और तीन गुप्तियाँ शील हैं। अथवा अहिंसा आदि व्रत का पालन करने वाले मुनि के लिए सत्य आदि व्रत का पालन करना भी शील है। अथवा २८ मूलगुण व्रत हैं और उनका पालन करने के लिए १२ प्रकार के तप एवं २२ प्रकार को परीषहों की जय होने रूप उत्तरगुण शीलपने से कहा जाता है। इसी प्रकार श्रावकों के लिए पाँच अहिंसा आदि अणुव्रत है। तीन गुणव्रत है और चार शिक्षा व्रत हैं। इनके अतिचार जैसे आगम में कहे गये है उसी तरह से जानकर के अनतिचार रूप से प्रवर्तन करना तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बन्ध करता है। शील और व्रत जब सम्यक्त्व के साथ रहते है तभी वह सम्यक्चारित्र में अन्तर्भूत होते हैं। और तभी ही तीर्थंकर नाम कर्म के बन्ध के कारण होते हैं।

शील व्रतों का पालन करने वाली आत्मा का मन शुद्ध होता है क्योंकि वह परमार्थ के कार्य में संलग्न होता है। जब कभी भी विषय के व्यामोह से मन शुद्धि में हानि होती है तो वह प्रथम दोष अतिक्रम उत्पन्न होता है। उस अतिक्रम के कारण से शीलव्रतों का उल्लंघन हो जाने से मन का प्रवर्तन होना दूसरा व्यतिक्रम नाम का दोष है। पुनः इन्द्रिय विषयों में प्रवर्तन होना तीसरा अतिचार नाम का दोष है। पुनः अति आसक्ति के कारण से व्रतशीलों का विनाश हो जाना चौथा अनाचार दोष है। इस कारण से साधु या श्रावक निर्विकल्प होने के लिए व्रतों को ग्रहण करता है। अपने आवश्यक आदि कार्यों में उसका मन कभी भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता है। रागादि कारणों से मन में क्षोभ होता है क्योंकि ममत्व आदि परिणामों का सद्भाव होता है। इसलिए जो अवक्षित मन वाला ही निरतिचार व्रत का पालन करने वाला है। सत्य ही है–''**जो निर्विकल्प साधु बाहर के कार्यों से क्षोभित नहीं होता है और समता में लीन रहते हुए सदैव प्रसन्न रहता है वही शील और व्रत में अनतिचार स्वभाव वाला होता है अर्थात् वही शील और व्रत में अनतिचार धारण करता है।''(तित्थयर भावणा २३)**

क्रोधादि कारण से व्रतों में दोष लगना शील का भंग कहा गया है। इसी कारण से तिर्यंच आदि कुशील गति में जीव जन्म लेता है। एक गुणनिधि नाम के मुनिराज पर्वत पर चातुर्मास का वर्षायोग धारण किये थे। वह धीर ,वीर और चारण ऋद्धि के धारक थे।उनकी प्रशंसा सर्वत्र फैल रही थी। योग समाप्ति होने पर वह आकाश मार्ग से अन्यत्र चले गये। उसी समय पर मृदुमति नाम के मुनि आहार करने के लिए उस नगर में आये नागरिक जनों ने विचार किया वही मुनि यहाँ आ रहे हैं। इसलिए बहुत प्रकार से अनेक प्रकार के द्रव्यों से तथा स्तुति, कीर्तिगान के द्वारा मुनि की प्रशंसा की। उस प्रशंसा को सुनकर भी मुनि ने मायाचार से कुछ भी सत्य नहीं कहा ।उस कारण से वह मुनि मरण को प्राप्त होकर स्वर्ग के फल को भोगकर पुनः आकर के त्रिलोक मण्डन नाम का रावण का हाथी हुआ। इसलिए हे भव्यजनो! क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों के द्वारा व्रतों में दूषण नहीं लगाना चाहिए।

❑ ❑ ❑

(४) अभिक्खणाणावओगभावणा

जो मोक्खमग्गस्स जोग्गहेदू सुदणाणेण णिच्चं भावेइ सो अभिक्खणाणोवओगो होदि। सम्मद्दंसणस्स गुणा के संति, कधं सम्मचारित्तस्स णिद्दोसपालणं हवे, परमट्ठभावणाए उवओगं मुहु देदि, इंदियमणविसय-चायट्ठं सज्झायं कुणदि, सुदेण गिहीदत्थं मणम्मि मुहु चिंतेदि भावेहि सो अभिक्खं णाणोवजोगे वट्टइ। सच्चं-

पालदि रक्खदि णिच्चं जो सद्दिट्ठी हु सम्मचारित्तं।
परमट्ठभावणट्ठं णाणमभिक्खं विजाणादि॥ ति.भा. २९॥

जिणवयणाणुसारेण सुदणाणस्सुवओगो विसयसुहं परिहरिय जम्मजरामरणरहिदे उत्तमट्ठाणे ठवेदि तदो णिरंतरं सज्झाओ भव्वेहि कादव्वो। तहावि अकाले सज्झाओ ण करिदव्वो। संझाकाले पुव्वण्हस्स मज्झण्हस्स अवरण्हस्स रत्तीए मज्झवेलाए य दोघडियापज्जंतं सज्झाओ ण करणिज्जो। सिद्धंतगंथाणं पढणे पाढणे य खेत्तादिचउव्विहसुद्धी पालेयव्वा।

एगो सिवणंदी णामा मुणी गुरुमुहेण सुणेदि- जं रयणीए सवण-णक्खत्तस्सुदए जादे सज्झायजोग्गकालो होदि। तत्तो पुव्वियं अकालो। एवं जाणंतो वि सो तिव्वकम्मोदएण गुरुस्स आणं उल्लंघिय सज्झायं करित्था। तप्फलेण असमाहिमरणेण गंगाणईए महामच्छो जादो। कदा एक्को मुणी णईए तडस्स ट्ठिदो उच्चसरेण सज्झायं कुणंतो चिट्ठइ। तस्स पाठस्स झुणिं सुणिय मच्छस्स जाइसुमरणं जादं। खणंतरेण अकालसज्झायफलं णादूण सो तडस्स समीवं समागच्छइ। गुरुणा सो पडिबोहिदो। तदा मच्छेण सम्मत्तं पंच अणुव्वयाइं च गिहीदाइं। तप्फलेण आउअं पूरिय सो सग्गे महड्ढियो देवो जादो।

तेण आलस्सपरिच्चागेण णाणभावणाकरणं णाम सज्झाओ भणियो। पमादं परिहरिय जो विकहाए खाइपूयालोहेसु दुज्झाणे य चित्तं ण देदि सो अभिक्खणाणोवओगो। ण केवलं सत्थाणं अज्झयणं णाम णाणोवओगो होदि। तस्स पओजणं जो जाणेदि सो णाणी होदि। णाणस्स फलं अण्णाणस्स मोहरायदोसाणं य अभावो विहिदो। वुत्तं च-

जेण राया विरज्जेदि जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मित्तिं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे॥ (मूला.)

❑ ❑ ❑

(४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगभावना

जो मोक्षमार्ग के योग्य हेतु ....की श्रुतज्ञान के द्वारा नित्य भावना करता है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी होता है। सम्यग्दर्शन के गुण कितने, कैसे सम्यक्चारित्र का निर्दोष पालन होवे, परमार्थ की भावना से इन विषयों में बार-बार उपयोग जो देता है वह इन्द्रिय और मन के विषय का त्याग करने के लिए स्वाध्याय करता है।

श्रुत के द्वारा ग्रहण किया हुआ अर्थ मन में बार-बार चिन्तन करता है और भावना करता है वह निरन्तर ज्ञानोपयोग में वर्तन करता है। सत्य ही है-

''जो सम्यग्दृष्टि परमार्थ की भावना के लिए सम्यक्चारित्र का नित्य पालन करता है और रक्षा करता है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग को जानता है।'' (तीर्थंकर भावना)

जिन वचनों के अनुसार श्रुतज्ञान का उपयोग विषयसुख का परिहार करके जन्म-जरा-मरण से रहित उत्तम स्थान में स्थापित कर देना है। इसलिए निरन्तर भव्यों के द्वारा स्वाध्याय किया जाना चाहिए। संध्याकाल में पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न की और रात्रि की मध्य बेला में दो घड़ी पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। सिद्धान्त ग्रन्थों के पढ़ने में और पढ़ाने में क्षेत्र आदि चार प्रकार की शुद्धि का पालन करना चाहिए।

एक शिवनन्दी नाम के मुनि ने गुरुमुख से सुना कि रात्रि में श्रवणनक्षत्र का उदय होने पर स्वाध्याय के योग्य काल होता है। उससे पहले अकाल होता है। इस प्रकार जानते हुए भी वह तीव्र कर्म के उदय से गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके वह स्वाध्याय करते थे। उसके फल से असमाधिमरण के द्वारा गंगानदी में महामत्स्य हो गये। कभी एक मुनि नदी के तट पर स्थित थे वह उच्च स्वर से स्वाध्याय कर रहे थे। उनके पाठ की ध्वनि को सुनकर के उस मत्स्य को जातिस्मरण हो गया। एक क्षण के बाद अकाल स्वाध्याय का फल जानकर के वह तट के समीप आ गया। गुरु के द्वारा वह समझाया गया। तब उस मत्स्य ने सम्यक्त्व और पंचअणुव्रतों को ग्रहण किया। उसके फल से आयु को पूर्ण करके वह स्वर्ग में महर्दिक देव बना।

इसलिए आलस्य का परित्याग करके ज्ञान भावना करना ही स्वाध्याय कहा गया है। प्रमाद का परिहार करके जो विकथा में ख्याति पूजा और लाभ में और दुर्ध्यान में चित्त नहीं देता है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी होता है। केवल शास्त्रों के अध्ययन का नाम ही ज्ञानोपयोग नहीं है। शास्त्र के अध्ययन का प्रयोजन जो जानता है वह ज्ञानी होता है। ज्ञान का फल, अज्ञान का तथा मोह, राग और द्वेष का अभाव कहा गया है। मूलाचार ग्रन्थ में कहा भी है-

''जिससे राग से विरक्ति हो, जिससे कल्याण मार्ग में लग जाये और जिससे मित्रता की प्रभावना हो वह ज्ञान जिनशासन में कहा गया है।''

❑ ❑ ❑

(५) संवेगभावणा

संसारदुक्खेसु णिच्चं भीरुदा संवेगो। अणाइसंसारे पच्चेयो जीवो णिगोदपज्जाए अणंतकालं णिवसिय कयाचि कालाइलद्धिवसेण तसपज्जायं लहेदि। एइंदियादो तसपज्जायस्स पत्तो बालुअसमुद्दे रयणकणियासंपत्ती व्व दुल्लहा। तसपज्जाएसु वि पंचिंदियपज्जाओ गुणेसु कियण्णगुणोव्व दुल्लहो। पंचिंदिएसु वि मणुसपज्जाओ चउप्पहे रयणरासिव्व दुल्लहो। मणुसपज्जाएण पुणो वि मणुयपज्जायुवलद्धी विणट्ठरुक्खपरमाणूणं पुणु मेलणमिव दुल्लहा। एवंविहसंसारे जीवो जम्ममरणादियं कुणंतो अणेयविहं दुक्खं भुंजेदि। सच्चमेव–

गब्भे वासे जम्मं संजोगविओगदुक्खसंतत्तो।
रोगजरा जो चिंतइ संवेगो तस्स होदि णवो॥ ति.भा. ३६

दसविहधम्मज्झाणेण संसारकायसहावस्स चिंतणेण य संवेगो णवो णवो उववज्जइ।

भरहरायस्स तेवीसाहियणवसयपुत्ता णिगोदपज्जाएण णिगच्छिदूण मणुयपज्जायं लहंति। ते उसहदेवसमवसरणे णियपुव्वभवं जाणिय अच्चंतोदासेण चिट्ठंति। सयं णियपिअरेण सहावि ण बोल्लंति। एदस्स कारणं एयदिणे भरहेण जिणदेवसमीवं पुट्ठं। 'पुव्वभवसुमरणादो ते अच्चंतसंविण्णा' एवं जिणदेवेण वुत्तं। तदो ते जुगवं एयदिणे उसहदेवसमवसरणे सहसा दिक्खिदा। एवंविहसंवेगभावणा वि तित्थयरणामकम्मं बंधेदि।

❑ ❑ ❑

उव्वज्जदि विणस्सदि पज्जाया खलु जले तरंगा इव।
दव्वाणि गुणा तेसिं थिराणि विरला विजाणंति॥
—अनासक्तयोगी २/११

(५) संवेग भावना

संसार के दुःखों में नित्य भीरुता होना संवेग है। अनादि संसार में प्रत्येक जीव निगोद पर्याय में अनन्त काल तक रह कर के कदाचित् कालादि लब्धि के कारण त्रस पर्याय को प्राप्त होता है। एक इन्द्रिय से त्रसपर्याय की प्राप्ति बालु का समुद्र में रत्नकणिका की प्राप्ति के समान दुर्लभ है। त्रस पर्यायों में भी पंचेन्द्रिय पर्याय गुणों में कृतज्ञता गुण के समान दुर्लभ है। पंचेन्द्रियों में भी मनुष्य पर्याय चौराहे पर रखी रत्न राशि के समान दुर्लभ है। मनुष्य पर्याय से भी पुनः मनुष्यपर्याय की प्राप्ति विनष्ट हुए वृक्ष के परमाणुओं का पुनः उसी परमाणुओं से मिलकर बने वृक्ष के समान दुर्लभ है। इस प्रकार के संसार में जीव जन्म -मरण आदि करता हुआ अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है। सत्य ही है–

''गर्भ में वास जन्म संयाग वियोग के दुःख से संतप्त होना रोग और बुढ़ापा होना इनका जो चिन्तन करता है उसके लिए नवीन संवेग की प्राप्ति होती है।'' (तीर्थंकर भावना)

दस प्रकार के धर्म ध्यान से संसार और काय के स्वभाव के चिन्तन करने से भी नया-२ संवेग उत्पन्न होता है। भरत राजा के ९२३ पुत्र निगोद पर्याय से निकल कर के मनुष्य पर्याय को प्राप्त करते हैं। वह ऋषभदेव भगवान के समवशरण में अपने पूर्व भवों को जानकर के अत्यन्त उदास भाव से रहते हैं। स्वयं अपने पिता के साथ भी बातचीत नहीं करते हैं। इसका कारण एक दिन भरत राजा ने जिनेन्द्र देव के समीप जाकर पूछा। ''पूर्व भवों के स्मरण से वह अत्यंत सविंग्न है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा। तब वे सभी पुत्र एक साथ एक दिन ऋषभदेव भगवान के समवशरण में सहसा दीक्षित हो जाते हैं।'' इस प्रकार की संवेग भावना भी तीर्थंकर नाम कर्म के बन्ध का का कारण है।

❑ ❑ ❑

जल में तरंगों के समान निश्चित ही पर्यायें उत्पन्न होती हैं और विनष्ट होती है। द्रव्य और उनके गुण स्थिर(नित्य) होते हैं, यह विरले ही जानते हैं॥११॥ अ.यो.

(६) सत्तीए चागभावणा

परस्स पीदीए णियवत्थुसमप्पणं दाणं होदि। तच्च आहारोसहसत्थाहयभेएण चउव्विहं। अणगाराणं णवहाभत्तिपुव्वियं खज्जसज्जलेहपेयभेएण चउव्विह वत्थुपदाणं आहारदाणं। उववासवाहिपरिस्समकिलेसेहि पीडिदपत्तस्स पत्थाहारपदाणं ओसहदाणं। सपरस्स अण्णाणविणासणट्ठं जिणुत्तागमस्स लेहणं अण्णहत्थे पदाणं च सत्थदाणं णाणदाणं वा। जीवरक्खाणिमित्तं पिच्छिकमंडलुयादिउवयरणपदाणं अभयदाणं उवयरणदाणं वा। इमा भावणा छक्खंडागमसुत्तेसु पासुगपरिच्चागदाणामेण उल्लिहिदा। आइरियसिरिवीरसेणदेवो भणइ– 'दयाबुद्धीए साहूणं णाणदंसणचरित्तपरिच्चागो दाणं पासुअपरिच्चागदा णाम। ण चेदं कारणं घरत्थेसु संभवदि तत्थ चरित्ताभावादो। तिरयणोवदेसो वि ण धरत्थेसु अत्थि तेसिं दिट्ठिवादादि उवरिमसुत्तोवदेसणे अहियाराभावादो। तदो एदं कारणं महेसिणं चेव होदि।' इदि वयणेण आयादि– रयणत्तस्सुवदेसो खु पासुगस्स परिच्चागो णिरवज्जादो। सच्चमेव–

जो पासुअं हि भुंजदि पासुगमग्गेण चरदि सावेक्खं।
तस्साहुस्स य वयणं पासुग-परिच्चागदा णाम॥ ति.भा. ५०॥

तदो रयणत्तयस्स दाणं खलु एव महादाणं। तच्च साहूहिं केवलिभयवंतेहि य दाइज्जदि। सावगो वि समणाणं आहारोसहादिचउव्विहदाणं पासुअं हि देदि। तेण सावगो वि पासुगपरिच्चागदाणामभावणं भावेदि। उत्तमपत्तस्स पदत्तदाणफलेण सावगो उक्कस्सभोगभूमिं लहेदि जदि सो मिच्छादिट्ठी हवे, सम्मादिट्ठी पुण णियमेण वेमाणियदेवो होदि। मज्झमपत्तस्स पदत्तदाणफलेण सावगो मज्झमभोगभूमिं लहेदि जदि सो मिच्छादिट्ठी; सम्मादिट्ठी पुण णियमेण वेमाणियदेवो होदि। जहण्णपत्तस्स पदत्तदाणफलेण सावगो जहण्णभोगभूमिं लहेदि जदि सो मिच्छादिट्ठी हवे; सम्मादिट्ठी पुण णियमेण वेमाणियदेवो होदि। कुपत्तदाणेण कुभोगभूमिं लहेदि। अपत्तदाणं णिरत्थयं होदि।

चउव्विहदाणेसु पत्तेयं दाणं समये समये महाफलप्पदाई होइ। एगसमए राया वज्जजंघो सिरिमईकंताए सह चारणजुगलमुणीणं अरण्णे आहारं पदाइ। तदाणिं मंती पुरोहिदो सेणावई सेट्ठो य चउरो पुरिसो अइभत्तीए आहारदाणस्स अणुमोदणं करेंति। बहिट्ठिदा सद्दूलो णउलो वाणरो सूयरो य चउरो तिरिक्खा वि आहारं पस्संता पसण्णा होंति। तप्फलेण अट्ठमभवे राया वज्जजंघो

(६) शक्ति त्याग भावना

दूसरों की प्रीति के लिए अपनी वस्तु का समर्पण करना दान है। वह दान आहार,औषधि शास्त्र और अभय के भेद से चार प्रकार का है। अनगारों के लिए नवधा भक्ति पूर्वक खाद्य, स्वाद्य, लेय और पेय के भेद से चार प्रकार की वस्तु का प्रदान करना आहार दान है। उपवास व्याधि, परिश्रम के क्लेश के द्वारा पीड़ित हुए पात्र को पथ्य आहार प्रदान करना औषधदान है। स्व और पर के अज्ञान का विनाश करने के लिए जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये आगम का लेखन करना,अन्य के हाथ में वह शास्त्र प्रदान करना, शास्त्र दान अथवा ज्ञान दान है। जीव रक्षा के निमित्त पिच्छी, कमण्डलु आदि उपकरणों को प्रदान करना अभय दान अथवा उपकरण दान है। यह शक्ति त्याग भावना श्री षट्खण्डागम सूत्र में 'प्रासुकपरित्याग' के नाम से उल्लिखित है। आचार्य **श्री वीरसेन देव** कहते हैं कि– ''दया, बुद्धि से साधुओं का ज्ञान ,दर्शन ,चारित्र का परित्याग रूप दान प्रासुक परित्याग है। और यह प्रासुक परित्याग नाम का दान गृहस्थों में सम्भव नहीं है। क्योंकि उनमें चारित्र अभाव रहता है। रत्नत्रय का उपदेश भी गृहस्थों में नहीं होता है क्योंकि उनके लिए दृष्टिवाद आदि उपरिम सूत्रों के उपदेश देने के अधिकार का अभाव है। इसलिए यह कारण महर्षियों के लिए ही होता है। इस प्रकार के वचन से सिद्ध होता है कि रत्नत्रय का उपदेश भी प्रासुक का परित्याग है क्योंकि वह निरवद्य होता है। सत्य ही है–

''जो प्रासुक ही भोजन करता है प्रासुक मार्ग से ही चलता है और प्रासुक मार्ग से ही अपेक्षा सहित (कारणवश) चलता है अर्थात् विचरण करता है उस साधु के वचन ही प्रासुक परित्याग नाम से कहे जाते हैं।''

इसलिए रत्नत्रय का दान ही वास्तव में महा दान है। वह दान साधुओं के द्वारा और केवली भगवंतों का द्वारा ही दिया जाता है। श्रावक भी श्रमणों के लिए आहार ,औषधि आदि चारों प्रकार का दान प्रासुक ही देता है। इसलिए श्रावक भी प्रासुक परित्याग नाम की भावना भाता है। उत्तम पात्र को दिये गये दान के फल से श्रावक उत्कृष्ट भोगभूमि को प्राप्त होता है। यदि वह श्रावक मिथ्यादृष्टि हो तो उत्कृष्ट भोगभूमि पाता है और अगर सम्यग्दृष्टि हो तो वह नियम से वैमानिक देव होता है। मध्यम पात्र को दिये गये दान के फल से यदि वह श्रावक मिथ्यादृष्टि है तो वह मध्यम भोग भूमि को प्राप्त करता है और यदि सम्यग्दृष्टि है तो नियम से वैमानिक देव होता है। जघन्य पात्र को दिये गये दान के फल से यदि वह श्रावक मिथ्यादृष्टि है तो जघन्य भोगभूमि को प्राप्त करता है और यदि सम्यग्दृष्टि है तो वह नियम से वैमानिक देव होता है। कुपात्र दान से कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है और अपात्र को दिया गया दान निरर्थक होता है।

चार प्रकार के दानों में प्रत्येक दान समय–समय पर महान फल प्रदान करने वाला होता है। एक समय राजा वज्रजंघ श्रीमती रानी के साथ चारण युगल मुनियों को जंगल में आहार प्रदान दिये। उसी समय पर मंत्री, पुरोहित, सेनापति और श्रेष्ठी

उसहदेवतित्थयरो, राणी सिरिमई राया सेयंसो, मंती उसहदेवस्स पुत्तो भरदो, पुरोहिदो उसहदेवस्स बाहुबली पुत्तो, सेणावई उसहसेणणामगो सुदो, सेट्ठो य अणंतविजयणामगो पुत्तो चउरो तिरिक्खा य कमेण अणंतवीरिओ, अच्चुओ, वीरो वरवीरो य णामहेआ सुदा होंति। आहारदाणं जेण दत्तं तेण ण केवलं भोयणं दत्तं किंतु रयणत्तयं हि पदत्तं जदो तेण विणा रयणत्तयस्स ट्ठिदी चिरं ण होइ। ओसहदाणेण सिरिकिण्हो महारायो तित्थयरणामकम्मं बंधेदि। कोंडेसगोवो सत्थदाणफलेण सुदकेवली होदि। अभयदाणफलेण सूअरो वि सग्गंगदो त्ति पसिद्धी। णियसत्तिं अणिगूहिय दाणकरणं तित्थयरणामसुहकम्मं बंधेदि।

❑ ❑ ❑

जोव्वण काले धम्मे रुइगो जो जाण णियउभव्वो सो।
साहू जाणादि जोग्गं तेण दिसादरिसणं सेयं॥
—अनासक्तयोगी३/१६

और सेठ ये चार पुरुष भी अतिभक्ति से आहार दान की अनुमोदना करते है। बाहर स्थित शार्दूल, नकुल, वानर और शूकर ये चार तिर्यंच भी आहार की प्रशंसा करते हुए आहार को देखते हुए प्रसन्न होते हैं। उसके फल से आठवें भव में वह राजा वज्रजंघ, ऋषभदेव तीर्थंकर होते हैं, रानी श्रीमती राजा श्रेयांस होती है, मन्त्री ऋषभदेव का पुत्र भरत होता है और पुरोहित ऋषभदेव का पुत्र बाहुबली होता है। सेनापति वृषभसेन नाम का पुत्र होता है और वह सेठ अनन्तविजय नाम का पुत्र होता है। वह चारों तिर्यंच भी क्रम से अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर और वरवीर नाम के पुत्र होते हैं। आहार दान जिन्होंने दिया है उन्होंने न केवल भोजन दिया है किन्तु रत्नत्रय का ही दान किया है क्योंकि भोजन के बिना रत्नत्रय की स्थिति चिरकाल तक नहीं होती है।

औषध दान से श्री कृष्ण महाराज तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध किये हैं। कोण्डेश ग्वाला शास्त्र दान के फल से श्रुतकेवली हुआ है। अभयदान के फल से शूकर भी स्वर्ग को प्राप्त हुआ है, इस प्रकार की प्रसिद्धि है। इसलिए निजशक्ति को नहीं छुपाते हुए दान करना। तीर्थंकर शुभनामकर्म का बन्ध करता है।

❑ ❑ ❑

यौवनकाल में धर्म में जो रुचि करता है उसे निकटभव्य जानो।
वास्तव में साधु ही योग्य को जानता है इसलिए साधु के द्वारा
दिया गया दिशानिर्देश ही श्रेयस्कर है॥१६॥ अ.यो.

(७) सत्तीए तवभावणा

मणस्स इच्छाणिराहेण कायकिलेसद्वारेण चिदप्पम्मि लीणदा तवो। सो खलु बहिरब्भंतरभेएण बारसविहो होदि। तत्थ अणसणं अवमोदरियं वित्तिपरिसंखाणं रसपरिच्चागो विवित्तसेज्जासयणं कायकिलेसो चेदि बाहिरतवो छव्विहो। पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ विउसग्गो झाणं चेदि छव्विहो अब्भंतरतवो। तेसु चउव्विहारस्स परिच्चयणं एगदोतिचदुआदिछम्मासपज्जंतं अणसणतवो। छुहाए ऊणभोयणकरणं अवमोदरियं। भोयणभायणगिहदायगादिसंकप्पवसेण भोयणकरणं वित्तिपरिसंखाणं। छव्विहरसेसु दुद्धदहिघिदतेलगुडलवणभेएसु एयदोपहुडिरसाणं परिच्चागो रसपरिच्चागो। तिरिक्खणवुंसयवणिदासरागजणरहिदे एयंतणिज्जणट्ठाणे सेज्जासयणं विवित्तसेज्जासयणं। पल्लंकासणादिणा चिरं आदावणादिजोगेण कायस्स संतावणं कायकिलेसो। गुरुसमक्खं णियदोसणिवेदणं पायच्छित्तं। रयणत्तयादिगुणाणं गुणवंताणं च पूयासक्कारो विणओ। आइरियादिदसविहपत्ताणं काएण महुरवयणेण पसंसमणेण य दुक्खावहरणं वेज्जावच्चं। खाइपूयालाहलोहेण विणा कम्मणिज्जरट्ठं अट्ठंगसमवेदं सत्थाणं पढणपाढणलेहणोवदेसणचिंतणादियं सज्झाओ। अंतरंगबहिरंगोवहिपरिच्चयणं विउसग्गो। धम्मसुक्कज्झाणेसु परिणदी झाणं। बाहिरतवोकम्मं वि अंतरंगतवस्स वुड्ढिकारणं होदि तेणेव उसहदेवेण बाहुबलिणा सव्वतित्थयरेहि सव्वमहापुरिसेहिं अणुट्ठिदं। तवेण विणा मोक्खो ण होइ। अणेयरिद्धीणं पत्ती तवेण सहजेण होइ। अहो! मंदोदरीए पिअरो राया मओ मुणी होदूण णिक्कंखं तवं कुव्वंतो सव्वोसहिइड्ढिं पयडेइ। विण्हुकुमारमुणी विकिरियारिद्धिं तवबलेण लहेदि। सत्तीए अणिगूहियवीरिएण तवोकम्मं कादव्वं। सरसाहारओसहजणिदसामत्थं णाम सत्ती बलं वा होदि। वीरियंतराइयकम्मखओवसमेण अप्पणो सत्ती वीरियं णाम। जहा अणलेण तत्तं सुवण्णं सिग्घं सुद्धं जादि तहा कम्ममलकलंकिदो आदा तवोकम्मेण सुद्धो होदि। बारहविहतवेसु झाणतवो सव्वुक्कस्सो। झाणबलेण जोगी कम्माइं चुण्णं करेदि तहा जहा वज्जघादेण पव्वदा चुण्णंति। तवेण सह अज्झप्पझाणस्स जोगो सहवोवलद्धीए हेऊ। सच्चमेव–

तवस्स कज्जं किल पावहाणी अज्झप्प कज्जं चिरमोहहाणी।
दोण्हं वि जोगेण सहावलद्धी समासदो भण्णदि आदसुद्धी॥ ति.भा. ४८॥

❑ ❑ ❑

(७) शक्ति से तप भावना

मन की इच्छाओं के रुक जाने से काय क्लेश के द्वारा चैतन्य आत्मा में लीनता तप है। वह तप बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का होता है। उसमें-अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये बाहरी छः प्रकार के तप हैं। प्रायश्चित्त , विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः प्रकार के अभ्यन्तर तप हैं। इन तपों में चारों प्रकार के आहार का परित्याग एक, दो, तीन, चार आदि छः मास पर्यन्त तक के लिए कर देना अनशन तप है। क्षुधा से कुछ कम भोजन करना अवमौदर्य तप है। भोजन, भाजन, गृह, दाता आदि के संकल्प से भोजन करना वृत्तिपरिसंख्यान तप है। छह प्रकार के रसों में दूध, दही, घी, तेल, गुड, नमक के भेद से एक, दो आदि रसों का त्याग कर देना रस परित्याग तप है। तिर्यंच, नपुंसक और स्त्री तथा सरागजनों से रहित एकान्त निर्जन स्थान में शय्यासन करना विविक्त शय्यासन तप है। पल्यंक आसन आदि के द्वारा चिरकाल तक आतापन आदि योग से काय को सन्ताप देना कायक्लेश तप है। गुरु के समक्ष निज दोषों का निवेदन करना प्रायश्चित्त है। रत्नत्रय आदि गुणों की और गुणवानों की पूजा सत्कार करना विनय है। आचार्य आदि १० प्रकार के पात्रों को काया से, मधुर वचनों से और प्रसन्न मन से उनके दुःख को दूर करना वैयावृत्ति है। ख्याति, पूजा, लाभ के लोभ के बिना कर्म निर्जरा के लिए आठ अंगों से सहित शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, लेखन करना, उपदेश देना, चिन्तन आदि करना स्वाध्याय है। अंतरंग, बहिरंग उपधि का परित्याग करना व्युत्सर्ग है। धर्म, शुक्ल ध्यानों में परिणति होना ध्यान है। यह अंतरंग तप है। बाह्य तप कर्म भी अंतरंग तप की वृद्धि के कारण होते हैं इसलिए ही ऋषभदेव ने, बाहुबली भगवान ने और सभी तीर्थंकरों तथा सभी महापुरुषों ने उस बाहरी तप का अनुष्ठान किया है। तप के बिना मोक्ष नहीं होता है। अनेक ऋद्धियों की प्राप्ति तप से सहज ही होती है। अहो! मन्दोदरी के पिता राजा मय मुनि होकर के निःकाञ्च तप को करते हुए एक सर्वोषधि ऋद्धि को प्राप्त हुए थे। विष्णुकुमार मुनि, विक्रिया ऋद्धि को तप के बल से ही प्राप्त किये थे। शक्ति से अपने वीर्य को नहीं छिपाते हुए तपः कर्म करना चाहिए। सरस आहार और औषधि से उत्पन्न सामर्थ्य को शक्ति अथवा बल कहते है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुई आत्मा की शक्ति वीर्य कहलाती है। जैसे- अग्नि ये तप्त हुआ स्वर्ण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार से कर्म मल से कलंकित आत्मा तपः कर्म से शुद्ध हो जाती है। बारह प्रकार के तपों में ध्यान तप सर्व उत्कृट है। ध्यान के बल से योगी कर्मों को उसी प्रकार चूर्ण कर देता है जैसे वज्र के घात से पर्वत चूर्ण हो जाते हैं। तप के साथ अध्यात्म का योग स्वभाव की उपलब्धि का हेतु है। सत्य ही है-

''तप का कार्य वास्तव में पाप की हानि है और अध्यात्म का कार्य चिरकालीन मोह की हानि है। दोनों के ही संयोग से स्वभाव की उपलब्धि होती है। यह आत्मा की शुद्धि का मार्ग संक्षेप से कहा गया है।''(तीर्थंकर भावणा ४८)

❑ ❑ ❑

(८) साहुसमाहिभावणा

मुणिगणाणं तवे केणचि कारणेण विग्घे जादे पयत्तेण णिवारणं भंडागारे अग्गिपसमणमिव साहुसमाही णाम। साहुसमाहिभावणा णिच्चं साहुणा कादव्वा। अण्णसाहुस्स विग्घे जादे हि साहुसमाहिभावणा जदि एयंतेण हवे तो परावेक्खी भावणा जाएज्ज। तेण णियमणेण णियमणवचिकायजोगाणं संजदकारणं अप्पमत्तो होदूण पवट्टणं च णिजस्सियसाहूसमाही होदि। सच्चमेव–

अपमत्ता जा चरिया मणवयणकायजोगजुत्ताणं।
साहूणं सा भणिदा साहुसमाहिभावणा होदि॥ ति.भा. ५८॥

ण च समाहिकाले एवंविहभावणा संभवदि किंतु सव्वकालं जदो चित्ते विक्खेवाहावो समाही णाम। जो साहू सगचित्ते ईसाकोहमाणलोहादिवियारेण णियचित्तं ण मलिणइ सो अण्णसाहूणं चित्तं वि सोधेइ। णियणियडवसिणं साहम्मिसाहुं जो ण हीलेइ सो सव्वकालं साहुसमाहिभावणाजुदो होइ। साहुसमाहिभावणाअ णिमित्तेण सगपरिणामाणं विसुद्धी वड्ढेदि। अण्णसाहुस्स मणम्मि पहावो अप्पसरूवविण्णा-दस्सेव होदि ण अण्णस्स। एगसमये राया सेढिगो भयवंतमहावीरस्स समवसरणे गच्छइ। मज्झपहे सो एगं धम्मरुइं मुणिं पासइ जस्स मुहे विचित्ता वियडी दीसदि। तस्स कारणं गोयमदेवं पुच्छइ। गोयमगणहरेण तस्स कारणं कहिदं। अंत एवं वि भणिदं जं- अंतोमुहुत्तं जदि इत्थं कलुसपरिणामा हवेज्ज तो णिरयाउबंधजोग्गपरिणामा वि। तेण सेढिय! पडिबोहिय तस्स थिरत्तं कायव्वं। सेढिगो तत्थ गदो। पडिबोहणं कदं। जेण परिणामाणं थिरत्ता जादा। तक्खणे सुक्कझाणबलेण केवलणाणं पत्तं। धम्मरुइकेवलिणं आगंतूण देवा पूजंति। एसो पहावो साहुसमाहिभावणाअ जाणिज्जो।

❑ ❑ ❑

जत्थ रुई तत्थ मग्गो वि

(८) साधु समाधि भावना

मुनिगणों के तप में किसी कारण से विघ्न उत्पन्न हो जाने पर भाण्डागार में लगी हुई अग्नि के प्रशमन की तरह उसका प्रयत्न पूर्वक निवारण करना साधु समाधि है। साधु समाधि भावना नित्य ही साधु के द्वारा की जानी चाहिए । अन्य साधु के लिए विघ्न उपस्थित हो जाने पर साधु समाधि भावना यदि हो तो एकान्त से वह परापेक्षी भावना हो जायेगी। इसलिए अपने मन से अपने मन, वचन, काय योगों को संयत करना और अप्रमत्त होकर के प्रवृत्ति करना निज आश्रित साधु समाधि होती है। सत्य ही है–

''**मन वचन और काय योगों से युक्त हुए साधु के अप्रमत्त रूप जो चर्या है वह साधु समाधि भावना कही गई है।**''

यह साधु समाधि भावना केवल समाधि काल में ही नहीं है किन्तु सर्वकाल में होती है क्योंकि चित्त में विक्षेप के अभाव का नाम ही समाधि है। जो साधु अपने चित्त में ईर्ष्या, क्रोध, मान, लोभ आदि विकार से निज चित्त को मलिन नहीं करता है वह अन्य साधुओं के चित्त को भी शुद्ध करता है। अपने निकटवासी साधर्मी साधु का जो तिरस्कार नहीं करता है वह सर्वकाल साधु समाधि भावना से युक्त होता है। साधुसमाधि की भावना के निमित्त से अपने परिणामों की विशुद्धि बढ़ती है। अन्य साधु के मन पर भी उसी का प्रभाव पड़ता है। जिसका मन आत्म स्वरूप के ज्ञान से युक्त होता है अन्य किसी का नहीं। एक समय राजा श्रेणिक भगवान महावीर के समवशरण में जाते हैं। रास्ते में उन्होंने एक धर्मरुचि नाम के मुनि को देखा ,जिनके मुख पर विचित्र विकृति दिखाई दे रही थी। उसका कारण उन्होंने गौतम गणधर देव से पूछा–गौतमगणधर ने उसका कारण कहा और अन्त में यह भी कहा कि अन्तर्मुहूर्त तक यदि इस प्रकार के कलुष परिणाम होते रहे तो नरक आयु के बन्ध के योग्य परिणाम हो जायेंगे। इसलिए श्रेणिक! उन मुनिराज को सम्बोधित करके उनकी स्थिरता करनी चाहिए। श्रेणिक राजा वहाँ गये उनको सम्बोधन किया। जिससे उनके परिणामों में स्थिरता उत्पन्न हुई। उसी क्षण शुक्ल ध्यान के बल से उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। धर्म रुचि केवली की देव लोग आकर के पूजा करने लगे। यह प्रभाव साधु समाधि भावना का जानना चाहिए।

❑ ❑ ❑

जहाँ रुचि है वहाँ मार्ग भी होता है

(९) वेज्जावच्चकरणभावणा

गुणवंतेसु साहुसु दुक्खोवणिवादे सदि णिरवज्जविहिणा तद्दुक्खहरणं वेज्जावच्चं णाम। वेज्जावच्चस्स दसपत्ताणि आइरियोवज्झायतवस्सिसिक्खगिलाणगणकुलसंघसाहुमणुण्णभेएण होंति। तेसु पंचाचारपालणाय णियपरसिस्सेसु य कुसला आइरिया। सीसाणं जिणागमपाढणे कुसला उवज्झाया। सव्वदोभद्दादिघोरतवोकम्मकुसला तवस्सी। सिद्धंतसत्थाणमज्झयणपरा मोक्खमग्गिणो सिक्खा। रोगपीडिदा गिलाणा। वुड्ढमुणीणं समुदाओ गणो। आइरियस्स सीसाणं परंपरा कुलो। रिसिमुणिजइअणगारभेएण चउविहसमणसमूहो संघो। चिरपवज्जिदो साहू। आइरियादिसव्वसंघस्स पिओ मणुण्णो। एदेसिं रोगकिलेसादिकट्ठसमावण्णे सव्वपयारेण सेवासुसूसाकरणं वेज्जावच्चं। मुणिणा वेज्जावच्चं णिरवज्जेण कायव्वं जेण छक्कायजीवविराहणा ण हवे। असक्कावत्थाए मलमुत्तादिदेहवियाराणं अवहरणं मिट्ठोवदेसेण मणसमाहाणं आवस्सयोवयरणपदाणं जेण भयं ण हवे तं पबंधकरणं पादादिमद्दणं इच्चेवमादियं वेज्जावच्चं णाम। एवंविहं तवोकम्मं सुहझाणकारणेण धम्मबुद्धीए य एव कादव्वं ण अण्णविहपदग्गहणपूयाखाइ–पसंसादिपत्तिकारणेण।

वेज्जावच्चेण साहू सगप्पम्मि दुगुंछादेहरागसंकियवुत्तिअपसत्थरागादिसत्तुं विणासिय चित्तसुद्धिं करेइ परस्स य धम्मपालणे मरणकाले सुहेण आराहणाकरणे य सहाई होदि तेण अंतरंगतवं वेज्जावच्चं भणियं। वेज्जावच्चेण किण्हराइणा तित्थयरणामकम्मं बद्धं। सच्चमेव–

वेज्जावच्चतवो खलु महागुणो चित्तसुद्धिकरो पुज्जो।
किण्हेण जेण बद्धं तित्थयरणामकम्म सुहं॥ ति.भा. ११॥

पासुअदव्वेण वेज्जावच्चकरणे संजदस्स वि पावकम्मणो बंधो ण होदि किंतु कम्मणिज्जरणमेव। तेण सह तित्थयरसरिससेट्ठपुण्णकम्मपयडिबंधो, साहम्मिसु वच्छलदाए वुड्ढी, मणे णिराकुलत्तं, जसपसरणं, संघे मण्णदा इच्चादिअणेयफलसंजुत्तं तं णादव्वं। पुज्जपुरिसेसु अणुराएण विणा वेज्जावच्चं ण संभवइ तेण कारणेण पत्तदाणं जिणदेवपूया य वेज्जावच्चे अंतब्भवंति त्ति आइरियसमंतभद्देण उग्घोसिदं।

❑ ❑ ❑

(९) वैयावृत्यकरण भावना

गुणवान साधुओं पर दुःख आ जाने पर निर्दोष विधि से उनके दुःख को दूर करना वैयावृत्ति है। वैयावृत्ति के १० पात्र हैं। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ।

१. उनमें जो पंचाचार के पालन के लिए स्वयं और दूसरे शिष्यों के विषय में भी कुशल हैं वह आचार्य हैं।

२. शिष्यों को जिनागम के पढ़ाने में कुशल उपाध्याय हैं।

३. सर्वतोभद्र आदि घोर तपः कर्म करने में कुशल तपस्वी हैं।

४. सिद्धांत शास्त्रों के अध्ययन में तत्पर रहने वाले मोक्ष मार्गी शैक्ष्य हैं।

५. रोग से पीड़ित साधु ग्लान हैं।

६. वृद्ध मुनियों का समुदाय गण है।

७. आचार्य के शिष्यों की परम्परा कुल है।

८. ऋषि, मुनि, यति और अनगार के भेद से चार प्रकार के श्रमणों का समूह संघ है।

९. चिर काल से दीक्षित साधु है।

१०. आचार्य आदि सर्व संघ के प्रिय मनोज्ञ होते हैं।

इनके रोग, क्लेश आदि कष्टों के उत्पन्न हो जाने पर सभी प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करना वैयावृत्ति है। मुनि के द्वारा वैयावृत्ति निर्दोष रूप से की जानी चाहिए जिससे की षट्काय के जीवों की विराधना न हो। अशक्य अवस्था में मल, मूत्र आदि देह के विकारों का हटाना और मिष्ट उपदेश के द्वारा मन का समाधान करना आवश्यक उपकरण आदि प्रदान करना, जिससे कि भय उत्पन्न न हो उन सब वस्तुओं का प्रबन्ध करना, चरण आदि का मर्दन करना इत्यादि कार्य वैयावृत्ति हैं। इस प्रकार का तपः कर्म शुभ ध्यान का कारण होने से धर्म बुद्धि के द्वारा ही करना चाहिए। अन्य किसी प्रकार के पद ग्रहण , पूजा, ख्याति, प्रशंसा आदि प्राप्ति के कारण से नहीं करनी चाहिए। वैयावृत्ति के द्वारा साधु अपनी आत्मा में, जुगुप्सा, देह का राग, शंकित वृत्ति, अप्रशस्त रागादि, शत्रुओं का विनाश करके चित्त शुद्धि को कर लेता है। दूसरे के धर्म पालन में मरण समय पर सुख से आराधना करने में सहायक हो जाता है जिससे अन्तरंग तप वैयावृत्ति कहा गया है। वैयावृत्ति से कृष्ण राजा ने तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध किया था। सत्य ही है-

''वैयावृत्य तप महान गुण है। जो चित्त की शुद्धि करने वाला है और पूज्य है। कृष्ण राजा ने इसी वैयावृत्ति तप से तीर्थंकर नाम कर्म की शुभ प्रकृति का प्रबन्ध किया था।''(तित्थयर भावणा ११)

प्रासुक द्रव्य से वैयावृत्य करने में भी संयत को भी पाप कर्म का बन्ध नहीं होता है किन्तु कर्म निर्जरा ही होती है। उसके साथ-साथ तीर्थंकर सदृश श्रेष्ठ पुण्य कर्म प्रकृति का बन्ध ही होता है और साधर्मी जनों में वात्सल्य भाव की वृद्धि होती है मन में निराकुलता उत्पन्न होती है। यश फैलता है। संघ में मान्यता होती है। इत्यादि अनेक फलों से संयुक्त यह वैयावृत्ति जानना चाहिए। पूज्य पुरुषों में अनुराग के बिना वैयावृत्ति सम्भव नहीं है। इस कारण से पात्र दान और जिनदेव की पूजा भी वैयावृत्ति में ही अन्तर्भावित की गई है। इस प्रकार आचार्य समन्तभद्र महाराज ने उद्घोषित किया है। ❑ ❑ ❑

(१०) अरिहंतभत्तिभावणा

चउतीसाइसियसहिदाणं अट्ठमहापाडिहारेहिं संजुत्ताणं अणंतचउक्केहिं सह णियचेदणाए अणुभूदिपराणं अट्ठारहदोसवज्जिदाणं अरिहंताणं भावविसुद्धिजुत्तो अणुरागो भत्ती।

अरिहंतभत्तीए मिच्छाइट्ठी वि सम्मादिट्ठी होदि। खओवसमसम्माइट्ठी जीवो जिणिंदभत्तीए एव अप्पम्मि सम्मत्तपयडिउदएण सम्मत्तं वेदेदि। सो खलु जदा जिणिंदभत्तिं विउलभावणाविसेसेण पवड्ढेदि तदा खइयसम्मत्तस्स अहिमुहो होदि। दूरं हवे अविरदस्स कहा संजदो वि मोक्खपहे उवट्ठिदाणेयविग्घाणं णिवारणं जिणिंदभत्तीए हि करेदि।

आइरियसमंतभद्दो वाराणसीणयरीए अरिहंतभत्तीए पासाणदो चंदप्पहस्स पडिमं उग्घाडेइ। एक्को भेओ वि जिणभत्तीए सग्गे देवो होइ त्ति सव्वजणपसिद्धं। धणंजओ णाम गिहत्थो वि जिणभत्तिपहावेण णिजसुदस्स विसं अवहरेइ। ण केवलं सप्पविसं मोहविसं वि विणस्सइ। सच्चमेव-

मंतस्सेव हु थंभइ जिणपडिमाभत्ती भववुड्ढिविसं।
मंतव्वो सद्धाए जिणिंददेवस्स विसेसो ण॥ ति.भा. ॥

जे तित्थयररूवेण पडिट्ठिदा ते सव्वे पुव्वजीवणे अरिहंतभत्तीए सुट्ठु अणुराइणो संति।

एगो अवरजाइयचक्कवट्टी आसि। सगपिअरस्स विमलवाहणभयवंतस्स य मोक्खुवलद्धी जादा। एवं णाऊण अवराइएण णिव्वाणभत्तीए तिदिवसं उववासा कदा। पच्छा धम्मबुद्धीए सो चक्की जिणालए अरिहंतपूयं काऊण उववासेण बहुहा कालं णेई। कदाचि सगित्थीणं धम्मोवदेसेण पसण्णं कुणीअ। एगदा जिणमंदिरे जुगलचारणइड्ढिमुणिराया समागच्छंति। मुणिणा चक्किणो पुव्वभवा धम्मोवदेसे भणिदा। अंते भणिदं- तुज्झ आऊ एयमासमेत्तेण अवसिट्ठं खलु तेण अप्पहिदं कादव्वं। मुणिवयणेण चक्की हस्सिदो विचारेइ- मज्झ तवकरणकालो खयित्था। इत्थं जाणिय अट्ठदिवसपज्जंतं जिणिंदपूया कदा। अंते सगपुत्तस्स रज्जं दाऊण पाओवगमसण्णासेण बावीसदिणाणि चउविहाराहणं आराहंतो सग्गं गदो। अच्चुदसग्गे बावीससागरपज्जंतं आउअं णिट्ठविय अग्गं पंचमभवे णेमिणाहो तित्थयरो जादो। सक्खियं अरिहंतस्स अभावे वि अरिहंतदेवस्स बिंबाणं भत्ती कायव्वा। ताए वि णिहत्तिणिकाचियकम्माणं खएण सम्मद्दंसणस्सुववत्ती होइ। देवगईए देवा वि सपरिवारा जदि जिणभत्तिं सया कुणंति तो मणुया खु किण्ण करेज्जा?

❑ ❑ ❑

(१०) अरिहन्त भक्ति भावना

चौंतीस अतिशयों से सहित, अष्ट महा प्रातिहार्य से संयुक्त, अनन्त चतुष्टय के साथ, निज चेतना की अनुभूति में लीन अठारह दोषों से रहित अरिहंत भगवान के लिए भाव विशुद्धि से युक्त अनुराग होना भक्ति है।

अरिहन्त भगवान की भक्ति से मिथ्यादृष्टि भी सम्यक दृष्टि हो जाता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भक्ति से ही आत्मा में सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से सम्यक्त्व का वेदन करता है। वही सम्यग्दृष्टि जीव जब जिनेन्द्र भक्ति विपुल भावना के विशेष से बढ़ाता है तब क्षायिक सम्यग्दर्शन के अभिमुख हो जाता है। अविरत सम्यग्दृष्टि की कथा तो दूर रहे, संयत भी मोक्ष मार्ग में उपस्थित होने वाले अनेक विघ्नों का निवारण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से ही करता है।

आचार्य समन्तभद्र महाराज वाराणसी नगरी में अरिहन्त भगवान की भक्ति के प्रसाद से ही चन्द्रप्रभु भगवान की प्रतिमा को प्रकट किये थे। एक मेंढक भी जिनेन्द्र भक्ति के प्रभाव से स्वर्ग में देव होता है। इस प्रकार यह कथा सर्वजन प्रसिद्ध है। धनंजय नाम का गृहस्थ भी भक्ति के प्रभाव से अपने पुत्र के विष को दूर कर देता है। न केवल जिनेन्द्र भक्ति के प्रभाव से सर्प विष दूर होता है किन्तु मोह विष का भी विनाश होता है। सत्य ही है–

''जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा में की गई भक्ति संसार रूप को बढ़ाने वाले विष को मन्त्र के समान स्तम्भित कर देती है। यह भी जिनेन्द्र देव की श्रद्धा से हो जाता है इसमें कोई विशेषता नहीं है।''(तीर्थंकर भावणा)

जो तीर्थंकर रूप से प्रतिष्ठित होते है वे पूर्व जीवन में अरिहन्त भगवान की भक्ति में अच्छी तरह अनुरागी होते हैं।

एक अपराजित नाम के चक्रवर्ती थे, अपने पिता विमलवाहन भगवान को मोक्ष की प्राप्ति हुई है, ऐसा जानकर अपराजित ने निर्वाण भक्ति से तीन दिन तक उपवास किया। पश्चात् धर्मवृद्धि से वह चक्रवर्ती जिनालय में अरिहन्त भगवान की पूजा करके उपवास से बहुत प्रकार का काल व्यतीत करता रहा। कभी अपनी स्त्रियों को भी धर्म के उपदेश से प्रसन्न करते थे। एक बार जिन मन्दिर में युगल चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आते हैं। मुनि के द्वारा चक्रवर्ती के पूर्वभव धर्म उपदेश में कहे गये। और अन्त में कहा कि तुम्हारी आयु मात्र एक महीना अवशिष्ट है इसलिए आत्महित करना चाहिए। मुनि के वचनों से चक्रवर्ती हर्षित होकर विचार करते हैं। मेरे तप चरण का काल विनष्ट हो गया। इस प्रकार जानकर के आठ दिन तक उन्होंने जिनेन्द्र भगवान की पूजा की और अन्त में अपने पुत्र को राज्य प्रदान करके प्रायोपगमन संन्यास के द्वारा बावीस दिन तक चतुर्विध आराधना करते हुए स्वर्ग को प्राप्त हुए। अच्युत स्वर्ग में २२ सागर पर्यन्त की आयु को पूर्ण करके आगे पाँचवे भव में वे नेमिनाथ तीर्थंकर हुए।

साक्षात् अरिहन्तों के अभाव में भी अरिहन्त देव के बिम्बों की भक्ति करनी चाहिए। क्योंकि उसके द्वारा भी निधत्ति और निकाचित कर्मों के क्षय से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। देवगति में देव भी सपरिवार यदि जिनेन्द्र भगवान की भक्ति सदा करते हैं तो मनुष्यों को क्यों नहीं करनी चाहिए? अर्थात् अवश्य करनी चाहिए।

❑ ❑ ❑

(११) आइरियभत्तिभावणा

कलिकाले मोक्खमग्गस्स पढमो आलंबणभूदो आइरियपरमेट्ठी अत्थि। सेट्ठआइरिओ पंथवादविमुक्को णिस्संगो परहिदरदो होदि। पंचाचारपरायणो जदो होदि तदो दंसणायारेण सुट्ठु सम्मत्तं पालेदि। णाणायारेण सुट्ठु सम्मणाणं वहेदि। चरित्तायारेण अहिंसामूलं रक्खिय तेरसविहं चारित्तं समायरइ। वीरियायारेण बलवीरियपरिक्कमेण सव्वाणुट्ठाणं अहिलसइ। तवायारेण बारसविहं तवं आवहइ। अण्णेसिं वि एवमेव कादुं संपेरइ सिक्खेदि य। अणेयगुणगंभीरो दिक्खासिक्खाए वरिट्ठो णवविहबंभचेरगुत्तो जिणसासणकित्तिचंदो अज्जियाहिं सह समायारस्स विदण्हू कंठगदपाणे वि ण जिणसासणमलिणयरो देसकालपरिट्ठिदियवगमणे कुसलो अण्णसंघाइरियाणिंदओ जिणुत्तविहाणेणेव संघसंचालणपरो झाणज्झयणपायच्छित्तसमाजदेसधम्मादिसव्वविसयेसु हिदचिंतणसीलो णाणापडिउत्तरदाणणिउणो सव्वमणुण्णो णिम्मलकित्तिहरो बहुमुहपडिहाए धणी आइरिओ होदि। तस्स भावविसुद्धिजुत्तो अणुरागो भत्ती णाम। आइरिया वि आइरियाणं भत्तिं कुणंति गुणगहणभावादो। आइरियकुंदकुंददेवो वि आइरियभत्तीए भणेदि-

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मं मरणं ण पावेंति॥

ते ण केवलं आइरियाणं अवि दु विसेसझाणविसेसजोगकरणसीलसाहुस्स वि भावविसोहीए वंदणं कुणंति। णिच्चमेव महरिसीणं जोगीणं इड्ढिपत्तमुणीणं च पादंबुरुहं हियए धरेंति। णट्ठमग्गाणं जीवाणं संसारसमुद्दतरणे महाणावो आइरियपरमेट्ठी अत्थि एवंविहस्स गुरुस्स सेवाभत्तियादियं पच्चक्खे वि परोक्खे वि तग्गुणकित्तणेण भव्वजीवेहि णिच्चं कादव्वं। चंदगुत्तमोरिएण भद्दबाहुसुयकेवलिसमीवं दिक्खा गिहीदा। अंतसमए सल्लेहणाकाले गुरुसेवा कदा। पच्छा सयं वि णिविग्घेण सल्लेहणा मरणं कदं। तस्स सुमरणं अज्ज चंदगिरिपव्वदे सिलालेहे उक्किण्णचित्तेसु य सवणवबेलगोले कण्णाटदेसे पसिद्धं।

आइरिओ जदा सल्लेहणासंमुहे होदि तदा जोग्गसिस्सं आइरियपदं पदाइ णिवेदेइ य- 'अज्ज पहुडि मूलायारपायच्छित्तसत्थाणुसारेण अणुचरिय सिस्साणं दिक्खासिक्खाविहीहिं अणुग्गहो कायव्वो।' आइरियाणं छत्तीसमूलगुणा होंति। तेसिं वण्णणं दुपयारेण विहिदं। पढमं दु बारसतवदसविह-धम्मपंचायार-छआवस्सयतिगुत्तभेएण छत्तीसगुणा णादव्वा। विदियपयारेण- आयारत्तादिअट्ठगुणा बारहविहतवोकम्मं दसविहट्ठिदिकप्पा छह आवस्सया चेदि छत्तीसगुणा णायव्वा। सच्चमेव-

विणीदभावेण धरेदि भारं वदस्स सिस्सस्स महाबली जो।
सो दिव्ववेज्जो भवदुक्खणासी आरोग्गबोहिं खलु देउ सत्तिं॥ ति.भा. ८९॥

❑ ❑ ❑

(११) आचार्य भक्ति भावना

कलिकाल में मोक्षमार्ग का प्रथम आलम्बन भूत आचार्य परमेष्ठी हैं। श्रेष्ठ आचार्य पन्थवाद से विमुक्त निःसंग और परहित में रत होते हैं। चूंकि पंचाचार में परायण वह होते हैं इसलिए दर्शनाचार से वह अच्छी तरह सम्यक्त्व का पालन करते है। ज्ञानाचार से वह अच्छी तरह सम्यग्ज्ञान धारण करते है। चरित्राचार से वह अहिंसा मूल की रक्षा करके तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण करते हैं। वीर्याचार से बल, वीर्य और पराक्रम के द्वारा सभी अनुष्ठानों की अभिलाषा रखते हैं। तपाचार के द्वारा वह बारह प्रकार के तप को धारण करते हैं। अन्य को भी इसी प्रकार से करने के लिए प्रेरणा देते हैं और शिक्षा देते हैं। अनेक गुणों से गंभीर शिक्षा-दीक्षा में वरिष्ठ, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों से सहित, जिन शासन के कीर्ति स्वरूप चन्द्रमा, आर्यिकाओं के साथ समाचार को जानने वाले, कण्ठगत प्राण हो जाने पर भी जिनशासन को मलिन न करने वाले, देश-काल की परिस्थितियों को जानने में कुशल अन्य संघ के आचार्यों की निन्दा नहीं करने वाले, जिनोक्त विधान से ही संघ के संचालन में तत्पर, ध्यान, अध्ययन, प्रायश्चित्त, समाज, देश, धर्म आदि सभी विषयों में हित रूप चिन्तन करने वाले अनेक प्रकार के प्रकार के प्रत्युत्तर प्रदान करने में निपुण, सर्व मनोज्ञ, निर्मल कीर्ति को धारण करने वाले, बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य होते हैं।

उनमें भाव विशुद्धि से युक्त अनुराग होना भक्ति है। आचार्य भी आचार्यों की भक्ति करते हैं क्योंकि उनमें गुण ग्रहण का भाव रहता है। आचार्य कुन्दकुन्द देव भी आचार्यों की भक्ति में कहते हैं–

''गुरु भक्ति के संयम से घोर संसार सागर तैर जाते हैं। आठ कर्मों का नाश हो जाता है और भव्य जीव जन्म मरण को भी प्राप्त नहीं करते हैं।''

वह आचार्य न केवल आचार्यों की भक्ति करते हैं किन्तु विशेष ध्यान, विशेष योग करने में निपुण साधु की भी भाव विशुद्धि के साथ वन्दना करते हैं। नित्य ही महर्षियों की, योगियों की, ऋद्धि प्राप्त मुनियों के मुनियों के चरण कमलों को अपने हृदय में धारण करते हैं। जो संसार में मार्ग से भ्रष्ट हैं ऐसे जीवों के लिए संसार समुद्र से तरने के लिए महान नाव आचार्य परमेष्ठी हैं। इस प्रकार के गुरु की सेवा भक्ति आदि प्रत्यक्ष में भी और परोक्ष में भी उनके गुण, कीर्तन आदि के द्वारा निरन्तर भव्य जीवों को करते रहना चाहिए। चन्द्रगुप्त मौर्य के द्वारा भद्रबाहु श्रुत केवली के समीप में दीक्षा ग्रहण की गयी। अन्त समय में सल्लेखना काल में चन्द्रगुप्त मौर्य ने गुरु की सेवा की। बाद में स्वयं भी निर्विघ्न रूप में सल्लेखना मरण किया। उनका स्मरण आज चन्द्रगिरि पर्वत पर शिलालेख में उत्कीर्ण चित्रों में श्रवणबेलगोल (कर्नाटक में) प्रसिद्ध है।

जब आचार्य सल्लेखना के सम्मुख होते हैं तब योग्य शिष्य को आचार्य पद प्रदान करके वह निवेदन करते हैं कि–''आज के बाद मूलाचार, प्रायश्चित्त शास्त्र के अनुसार अनुचरण करके शिष्यों की शिक्षा-दीक्षा विधि के द्वारा आपको शिष्यों का अनुग्रह करना है।'' आचार्यों के ३६ मूलगुण होते हैं। उनका वर्णन दो प्रकार से कहा गया है। (१) बारह तप, दस प्रकार का धर्म, पंचाचार, छह आवश्यक और तीन गुप्तियाँ ऐसे ये ३६ मूलगुण होते हैं। (२) आचारत्व आदि ८ गुण, १२ प्रकार के तप, १० प्रकार के स्थितिकल्प, छह आवश्यक इस तरह छत्तीस गुण होते हैं। सत्य ही है–**''जो विनीत भाव से व्रतों के भार को और शिष्यों के भार को धारण करते हैं वह महाबली हैं और वह दिव्य वैद्य हैं वही संसार दुःख का विनाश करने वाले हैं। ऐसे वह आचार्य परमेष्ठी मुझे आरोग्य और बोधि की प्राप्ति करावे और मुझे शक्ति प्रदान करें।'' (तित्थयर भावणा ८९)**

❑ ❑ ❑

(१२) बहुसुदभत्तिभावणा

बारसंगाणं णादा तक्कालियसव्वसुदस्स णादा य बहुसुदावंता भणिज्जंति। तेसिं भत्ती तदणुगुणपवट्टणं च बहुसुदभत्ती णाम। वड्ढमाणतित्थयरस्स परंपराए अंगपुव्वगंथाणं विण्णादा तेआसीदाहियछट्ठवसयवास-पज्जंतं जादा। पच्छा अंगपुव्वाणं एगदेसविदण्हू धरसेणाइरियो आसि। जो अग्गायणीयपुव्वस्स विदियस्स पंचमवत्थुणो चउत्थमहाकम्मपाहुडस्स णाणी उज्जअंतगिरिणो चंदगुहाए चिट्ठीअ। सगाउगं अप्पं जाणिऊण पुप्फदंतभूदबलीमुणीणं तेण णाणं दिण्णं। पुप्फदंताइरिएण सदपरूवणासुत्ताणि रइदाणि। पुणु भूदबलिसूरिणा सदपरूवणासुत्तेहि सह छसहस्ससिलोगपमाणसुत्ताणं रयणा जीवट्ठाणं खुद्दाबंधो बंधसामित्तविचओ, वेयणाखंडो, वग्गणाखंडो चेदि पंचखंडेसु कदा। तहा तीससहस्ससुत्तपमाणं महाबंधो णाम खंडो रइदो। एवं छक्खंडागमसुत्ताणं रयणं करिय पोत्थएसु णिबद्धं। जेट्ठसुदीपंचमी दिणे चउव्विहसंघसंणिहीए महापूजा सत्थाणं अणुट्ठिदा। तक्कालादो 'सुदपंचमी' पव्वो पसिद्धो जादो। आइरियधरसेणदेवस्स कहा जहा-**सिरिधवलागंथे** लिहिदं तदा एत्थ संकलिदं-

सोरट्ठ-विसय-गिरिणयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण अट्ठंग-महाणिमित्त-पारएण गंथ-वोच्छेदो होहिदि त्ति जाद-भएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो। लेह-ट्ठिय-धरसेणाइरिय-वयणमवधारिय तेहि वि आइरिएहि बे साहू गहण-धारण-समत्था धवलामल-बहु-विह-विणय-विहूसियंगा सील-माला-हरा गुरु-पेसणासण-तित्ता देस-कुल-जाइ-सुद्धा सयल-कला-पारया तिक्खुत्ताबुच्छियाइरिया अंधविसय-वेण्णायडादो पेसिदा। तेसु आगच्छमाणेसु रयणीए पच्छिमभाए कुंदेंदु-संखवण्णा सव्व-लक्खण-संपुण्णा अप्पणो कय-तिप्पदाहिणा पाएसु णिसुढिय-पदियंगा बे वसहा सुमिणंतरेण धरसेण-भडारएण दिट्ठा। एवंविह-सुमिणं दट्ठूण तुट्ठेण धरसेणाइरिएण '**जयउ सुय देवदा**' त्ति संलवियं। तद्दिवसे चेय ते दो वि जणा संपत्ता धरसेणाइरियं। तदो धरसेण-भयवदो किदियम्मं काउण दोण्णि दिवसे बोलाविय तदिय-दिवसे विणएण धरसेण-भडारओ तेहिं विण्णत्तो 'अणेण कज्जेणम्हा दो वि जणा तुम्हं पादमूलमुगवया' त्ति। 'सुट्ठु भद्दं' ति भणिऊण धरसेण-भडारएण दो वि आसासिदा। तदो चिंतिदं भयवदा-**सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि-जाहय-सुएहि।**

(१२) बहुश्रुत भक्ति भावना)

बारह अंगों के ज्ञाता अथवा तात्कालीन सर्व श्रुत के ज्ञाता बहुश्रुतवन्त कहे जाते हैं। उनकी भक्ति और उनके अनुकूल प्रवर्तन करना यही बहुश्रुत भक्ति कहलाती है।

वर्धमान तीर्थंकर की परम्परा में अंगपूर्व ग्रन्थों के विज्ञाता ६८३ वर्ष पर्यन्त तक हुए हैं बाद में अंग पूर्वों के एकदेश ज्ञाता धरसेन आचार्य हुए थे। जो द्वितीय आग्रायणी पूर्व के पंचम वस्तु के चतुर्थ महाकर्म प्राभृत के ज्ञाता थे, वह ऊर्जयंत पर्वत पर चन्द्र गुफा में स्थित थे। अपनी आयु को अल्प जानकर के पुष्पदन्त और भूतबलि मुनि को उन्होंने ज्ञान दिया। पुष्पदन्त आचार्य देव ने सत्प्ररूपणा सूत्रों की रचना की। पुनः भूतबलि आचार्य देव ने सत्प्ररूपणा सूत्रों के साथ ६००० श्लोक प्रमाण सूत्रों की रचना की जिसमें जीव स्थान क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्व विचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड इन पाँच खण्डों की रचना की गई । तथा ३०,००० सूत्र प्रमाण महाबन्ध नाम का छठवां खण्ड रचा गया। इस प्रकार षट्खण्डागम सूत्रों की रचना करके उन्हें पुस्तकों में निबद्ध किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन चतुर्विध संघ की सन्निधि में उन शास्त्रों की महापूजा की गयी। उस समय से श्रुत पंचमी यह पर्व प्रसिद्ध हो गया। आचार्य धरसेन देव की कथा जिस प्रकार श्री धवला ग्रंथ में लिखी गई है उसी प्रकार से यहाँ संकलित है–

सौराष्ट्र (गुजरात–काठियावाड़) देश के गिरिनगर नाम के नगर की चन्द्रगुफा में रहने वाले, अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचन–वत्सल और आगे अंग–श्रुत का विच्छेद हो जाएगा इस प्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको ऐसे उन धरसेनाचार्य ने महामहिमा अर्थात् पंचवर्षीय साधु–सम्मेलन में संमिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिण देश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख भेजा। लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों की भलीभांति समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ, नाना प्रकार की उज्वल और निर्मल विनय से विभूषित अंगवाले, शीलरूपी माला के धारक, गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रूपी भोजन से तृप्त हुए, देश, कुल और जाति से शुद्ध, अर्थात् उत्तम देश, उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न हुए, समस्त कलाओं में पारंगत और तीन बार पूछा है आचार्यों से जिन्होंने, (अर्थात् आचार्यों से तीन बार आज्ञा लेकर) ऐसे दो साधुओं को आन्ध्र–देश में बहने वाली वेणानदी के तट से भेजा। मार्ग में उन दोनों साधुओं के आते समय, जो कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सफेद वर्ण वाले हैं, जो समस्त लक्षणों से परिपूर्ण हैं, जिन्होंने आचार्य (धरसेन) की तीन प्रदक्षिणा दी हैं और जिनके अंग नम्रित होकर आचार्य के चरणों में पड़ गये हैं ऐसे दो बैलों को धरसेन भट्टारक ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न में देखा। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने 'श्रुतदेवता जयवन्त हो' ऐसा वाक्य उच्चारण किया। उसी दिन दक्षिणापथ से भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्य को प्राप्त हुए। उसके बाद धरसेनार्य की पादवन्दना आदि कृतिकर्म कमके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनों ने विनयपूर्वक धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि 'इस कार्य से हम दोनों आपके पादमूल को प्राप्त हुए हैं।' उन दोनों साधुओं के इस प्रकार निवेदन करने पर 'अच्छा है, कल्याण हो' इस प्रकार कहकर धरसेन भट्टारक ने उन दोनों साधुओं को आश्वासन दिया। इसके बाद भगवान धरसेन ने विचार किया कि–

मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा॥
दढ-गारव-पडिबद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो।
सो भट्ट-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो॥

इदि वयणादो जहाछंदाईणं विज्जा-दाणं संसार-भय-वद्धणमिदि चिंतेऊण सुहसुमिण-दंसणेणेव अवगय-पुरिसंतरेण धरसेण-भयवदा पुणरवि ताणं परिक्खा काउमाढत्ता '**सुपरिक्खा हियय-णिव्वुइकरेत्ति**'। तदो ताणं तेण दो विज्जाओ दिण्णाओ। तत्थ एया अहिक्खरा, अवरा विहीणक्खरा। एदाओ छट्ठोववासेण साहेहु त्ति। तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्दंतुरिया अवरेया काणिया। एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण पढंतेहि दो वि देवदाओ सहाव-रूव-ट्ठियाओ दिट्ठाओ। पुणो तेहि धरसेण-भयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेण-भडारएण सोम्म-तिहि-णक्खत्त-वारे गंथो पारद्धो। पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ-मास-सुक्क-पक्ख-एक्कारसीए पुव्वण्हे गंथो समाणिदो। विणएण गंथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी पूजा पुप्फ-बल-संख-तूर-रव-संकुला कदा। तं दट्ठूण तस्स 'भूदबलि' त्ति भडारएण णामं कयं। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दंतस्स 'पुप्फयंतो' त्ति णामं कयं।

पुणो ते तद्दिवसे चेव पेसिदा संता '**गुरु-वयणमलंघणिज्जं**' इदि चिंतिऊणागदेहि अंकुलेसरं वरिसा-कालो कओ। जोगं समाणीय जिणवालियं दट्ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि-विसयं गदो। भूदबलि-भडारओ वि दमिल-विसयं गदो। तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण विंसदि-सुत्ताणि करिय पढाविय पुणो सो भूदबलि-भयवंतस्स पासं पेसिदो। भूदबलि-भयवदा जिणवालिद-पासे दिट्ठ-विंसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्व-पमाणाणुगममादिं काऊण गंथ-रचणा कदा। तदो एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च भूदबलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति।

शैलघन, भग्नघट, अहि (सर्प), चालनी, महिष, अवि (मेंढा), जाहक (जोंक), शुक, माटी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़ रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गारवों के आधीन होकर विषयों की लोलुपता रूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव-वन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।

इस वचन के अनुसार यथाछन्द अर्थात् स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाले श्रोताओं को विद्या देना संसार और भय का बढ़ाने वाला है, ऐसा विचार कर, शुभ स्वप्न के देखने मात्र से ही यद्यपि धरसेन भट्टारक ने उन आये हुए दोनों साधुओं के अन्तर अर्थात् विशेषता को जान लिया था, तो भी फिर से उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया, क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय में संतोष को उत्पन्न करती है। इसके बाद धरसेनाचार्य ने उन दोनों साधुओं को दो विद्याएँ दीं। उनमें से एक अधिक अक्षरवाली थी औरदूसरी हीन अक्षर वाली थी। दोनों को दो विद्याएं देकर कहा कि इनको षष्ठभक्त उपवास अर्थात् दो दिन के उपवास से सिद्ध करो। इसके बाद जब उनको विद्याएं सिद्ध हुईं तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देवताओं को देखा कि एक देवी के दांत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। 'विकृतांग होना देवताओं का स्वभाव नहीं होता है' इस प्रकार उन दोनों ने विचारक मन्त्र-संबन्धी व्याकरण-शास्त्र में कुशल उन दोनों ने हीन अक्षरवाली विद्या में अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षरवाली विद्या में से अक्षर निकालकर मन्त्र को पढ़ना अर्थात् सिद्ध करना प्रारम्भ किया। जिससे वे दोनों विद्या-देवताएं अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रूप में स्थित दिखलाई पड़ीं। तदनन्तर भगवान् धरसेन के समक्ष, योग्य विनय-सहित उन दोनों के विद्या-सिद्धिसम्बन्धी समस्त वृत्तान्त के निवेदन करने पर 'बहुत अच्छा' इस प्रकार संतुष्ट हुए धरसेन भट्टारक ने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में ग्रन्थ का पढ़ना प्रारम्भ किया। इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान् से उन दोनों ने आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी के पूर्वाण्हकाल में ग्रन्थ समाप्त किया। विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त किया, इसलिए संतुष्ट हुए भूत जाति के व्यन्तर देवों ने उन दोनों उन दोनों में से एक ही पुष्प, बलि तथा शंख और तूर्य जाति के वाद्यविशेष के नाद से व्याप्त बड़ी भारी पूजा की। उसे देखकर धरसेन भट्टारक ने उनका 'भूतबलि' यह नाम रखा। तथा जिनकी भूतों ने पूजा की है और अस्त-व्यस्त दन्तपंक्तियों को दूर करके भूतो ने जिनके दांत समान कर दिये हैं ऐसे दूसरे का भी धरसेन भट्टारक ने 'पुष्पदन्त' नाम रखा।

तदनन्तर उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनों ने 'गुरु के वचन अर्थात् गुरु की आज्ञा अलंघनीय होती है' ऐसा विचार कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया। वर्षायोग को समाप्त कर और जिनपालित को देखकर (उसके साथ) पुष्पदन्त आचार्य तो वनवासि देश को चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल देश को चले गये। तदनन्तर पुष्पदन्त आचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर, वीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बनाकर जिन्होंने जिनपालित को पढ़ाकर अनन्तर उन्हें भूतबलि आचार्य के पास भेजा। तदनन्तर जिन्होंने अल्पायु हैं। इस प्रकार जिन्होंने जिनपालित से जान लिया है, अतएव महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का विच्छेद हो जायेगा इस प्रकार उत्पन्न हुई है बुद्धि जिनको ऐसे भगवान् भूतबलि ने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की। इसलिए इस खण्डसिद्धान्त की अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्ता कहे जाते हैं।

एवमेव सिरिगुणहराइरिएण कसायपाहुडं विरइयं। दोसु सिद्धंतगंथेसु उवरि संपहि आइरियसिरिवीरसेणदेवेहि विरइदा कमेण धवलाटीया महाधवलाटीया य उवलद्धा होंति।

बहुसुदभत्तिपरिणामेणेव आइरियेहिं महासत्थाणि रचिदाणि। तहेव आइरियकुंदकुंददेवेहि समयपाहुडं पवयणपाहुणं णियमसारो पंचत्थिकाओ अट्ठपाहुडं भत्तिसंगहो चेवेमादि सत्थं रचिदं। तहेव आइरियपुज्जपाददेवस्स सव्वट्ठसिद्धी जिणिंदवायरणं समाहितंतं इट्ठोवएसो चेवमादियं। पच्छा अकलंकदेवादिअणेयाइरियाणं बहुसुदभत्तीए परिणामो गंथरयणामिसेण दीसइ। एदेसु आइरियाणं भत्ती सुदभत्तिभावणाए सया कादव्वा। ण केवलं तेसिं परोक्खाणं अवि दु संपहिकाले उवलद्धसव्वसत्थाणं सिद्धंताज्झप्पणायवायरणादीणं जे जाणंति तेसिं भत्ती वि णिरंतरं कायव्वा। सच्चमेव-

विज्जंति जाणि संपदि सत्थाणि जीवकम्मकंडाणि।
सव्वाणि जो जाणंति बहुभत्तीए णमंसामि॥ ति.भा. ९४॥
णाच्चा खलु सिद्धंतं धवलादिमहाबंधसुदणाणं।
सुद्धप्पसमयसारं झायदि तं पाढगं वंदे॥ ति.भा. ९५॥

जो बहुसुदस्स जाणगो सो उवज्झायपरमेट्ठिकप्पो होदि तेण बहुसुदभत्तीए उवज्झायपरमेट्ठिणो भत्ती कदा एवं णादव्वा।

❑ ❑ ❑

गुरुसेवाकरणेण य मादपिदाणं खु मण्णदे आणं।
सगणाणेण य विज्जा चउत्थं पुण कारणं णत्थि॥
—अनासक्तयोगी २/३

इसी प्रकार श्री गुणधरआचार्य देव ने कषायपाहुड़ ग्रन्थ की रचना की। ये दोनों ही सिद्धांत ग्रन्थों के ऊपर वर्तमान में आचार्य श्री वीरसेनदेव के द्वारा विरचित क्रमशः धवला टीका और महाधवला (जयधवला) टीका उपलब्ध है।

बहुश्रुत भक्ति के परिमाण से ही आचार्यों के द्वारा महाशास्त्रों की रचना की गई है। इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द देव के द्वारा समयप्राभृत, प्रवचनप्राभृत, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, भक्तिसंग्रह आदि शास्त्रों की रचना की गई।

इसी प्रकार आचार्य पूज्यपाद देव के द्वारा सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्रव्याकरण, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश इत्यादि ग्रन्थों की रचना की।

बाद में अकलंक देव आदि अनेक आचार्यों का बहुश्रुत भक्ति का परिणाम यह ग्रन्थ रचना के बहाने से दिखाई देता है। इन आचार्यों की भक्ति श्रुतभक्ति की भावना से सदा करनी चाहिए ।

न केवल उनकी परोक्ष में भक्ति ही करनी चाहिए किन्तु वर्तमान काल में उपलब्ध सभी सिद्धांत ,अध्यात्म न्याय ,व्याकरण आदि सभी शास्त्रों को जो जानते हैं उनकी भक्ति भी निरन्तर करनी चाहिए। सत्य ही है–**''जो भी शास्त्र वर्तमान में उपलब्ध हैं उन सब जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि शास्त्रों को जो जानता है उनको मैं बहुत भक्ति से नमस्कार करता हूँ। यह बहुश्रुत भक्ति भावना है।''**

इसी तरह–

''जो धवला आदि महाबन्ध श्रुत ज्ञान रूप सिद्धान्त को जानकर के शुद्धात्मा का कथन करने वाले समयसार का ध्यान करते हैं उन उपाध्याय परमेष्ठी की में वन्दना करता हूँ।''

जो बहुश्रुत के जानकार है वह उपाध्याय परमेष्ठी के समान होते हैं इसलिए बहुश्रुत भक्ति में उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति की गई है यह जानना।

❑ ❑ ❑

गुरु सेवा करने से, माता-पिताओं की आज्ञा मानने से और स्वयं के ज्ञानावरण के क्षयोपशम से विद्या उत्पन्न होती है। विद्या प्राप्ति का कोई चौथा कारण नहीं है॥३॥ अ.यो.

(१३) पवयणभत्तिभावणा

जिणिंदमुहकमलविणिग्गदवयणं पुव्वावरदोसरहिदं ववहारणिच्छयणयगयतच्चदेसणासमण्णिदं पवयणं णाम। तस्स भत्तिकरणं पवयणभत्तिभावणा। पवयणं सुदणाणं सत्थं आगमो परमागमो भारदी सरस्सई सुयदेवदा, णाणदेवदा चेदि एयट्ठो। जं णाणं विण्णाणं जिणिंदपवयणे अत्थि तं अण्णत्थ ण विज्जदि। इंदभूदिसरिसो वि दव्वपंचत्थिकाय-तच्चणाणलोयालोयविसययणाणेहिं सुण्णो अहंकाररसं छंडिय पवयणणाणेण केवली जादो। जीवो पोग्गलो धम्मो अधम्मो आयासो कालो चेदि छदव्वाणि। जीवो चेयणासहिदो कत्ता भत्ता सदेहप्पमाणो असंखेज्जपदेसी णाणदंसणगुणेहि सह अणंतगुणभरिओ कम्मसहिदादो संसारी कम्मवदिरत्तादो मुत्तो णादव्वो। पोग्गलदव्वं अचेयणं रसफासवण्णगंधगुणेहि सहिदं अणुक्खंभेधएण अणेयविहो सद्दबंधसुहुमथूलसंठाणभेदतमच्छायाउज्जोदादावा पोग्गलदव्वस्स पज्जाया णायव्वा। गइपरिणदाणं जीवपोग्गलाणं गमणसहयारी धम्मदव्वं णिक्किरियं अखंडं एयदव्वं लोयपसरिदं णादव्वं। ट्ठिदिपरिणदाणं जीवपोग्गलाणं ट्ठिदिसहयारी अधम्मदव्वं णिक्किरियं अखंडं एयदव्वं लोयपसरिदं णादव्वं। आयासदव्वं सव्वदव्वाणं अवगासदाणजोग्गं एगं अखंडं णिक्किरियं लोयालोयपसरिदं णादव्वं। कालदव्वं लोयायासस्स पडिपदेसं ट्ठिदं अणुव्व सव्वदव्वेसु परिणमणकारणं असंखेज्जदव्वाणि समयणिमिसघडीघंटावरिसजुगादिअणंतकालपज्जायेहि सहिदं णादव्वं। सव्वाणि दव्वाणि सगसरूवे पदिट्ठिदाणि उप्पादवयधोव्वपरिणामसहिदाणि सया कालं सहावेण चिट्ठंति। कालदव्वविजुत्तं छदव्वाइं पंचत्थिकायसण्णाए णादव्वाइं भवंति। तहेव जीवाजीवासवबंधसंवरणिज्जरामोक्खतच्चाणि सत्त जीवस्स मोक्खमग्गसरूवं संसारमग्गसरूवं च हत्थामलगसरिसं फुडं दरिसिज्जंति। एवं अभूदपुव्वतच्चणाणेहि जुदो जिणागमो पढमाणुओगकरणाणु-ओगचरणाणुओगदव्वाणुओगभेएण चउव्विहो होइ। विसयभेएण विहजणं एदं। तत्थ पढमाणुओगे तित्थयरचक्कवट्टिणारायणपडिणारायणबलदेवादितेसट्ठिसलागापुरिसेहिं सह तक्कालगदाण्णाणेयमहापुरिसाणं चरित्तस्स पुव्वभवस्स पुण्णपावफलस्स आगामिपरिणदीए य वण्णणं होदि। करणाणुओगे लोयायासस्स अलोयायासस्स जुगपरियट्टणस्स चउग्गदीणं जीवाणं आउआवासादियस्स संखेज्जासंखेज्जाणंतगणणासहिदस्स वण्णणं होदि। चरणाणुओगे मुणिसावयधम्माणं वण्णणं होदि। दव्वाणुओगे जीवादिसत्ततच्चाणं उहयणयपमुहेण वण्णणं होदि। एवंविहपवयणं अणादियं सादियं च वीयतरुव्व विण्णेयं। सच्चमेव-

वीयतरुव्व कमेण य अणादि सादियं सिया जिणुत्तं खु।
जेणुत्तिण्णा णंता तं पवयणं सया पणमामि॥ ति.भा. १००॥

❑ ❑ ❑

(१३) प्रवचनभक्ति भावना

जिनेन्द्र भगवान के मुख कमल से विनिर्गत वचन पूर्वापर दोषों से रहित है और व्यवहार निश्चयनय गत तत्त्व देशना से युक्त हैं। उन्हीं का नाम प्रवचन है। उनकी भक्ति करना प्रवचनभक्ति भावना है। प्रवचन, श्रुतज्ञान, शास्त्र, आगम, परमागम, भारती, सरस्वती, श्रुतदेवता, ज्ञानदेवता यह सभी एकार्थवाची शब्द है। जो ज्ञान और विज्ञान जिनेन्द्र भगवान के प्रवचनों में है वह अन्यत्र नहीं है। इन्द्रभूति सदृश भी द्रव्य, पंचास्तिकाय, तत्त्वज्ञान, लोक, अलोक विषयक ज्ञान से शून्य था। वह अहंकार रस को छोड़कर इस प्रवचन ज्ञान से ही केवली हो गया। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये छह द्रव्य हैं। जीव चेतना से सहित है। कर्ता, भोक्ता, स्वदेहप्रमाण, असंख्यात प्रदेशी, ज्ञान दर्शन गुणों के साथ अनन्त गुणों से भरा हुआ, कर्म सहित होने से संसारी और कर्मों से रहित होने से मुक्त जानना चाहिए। पुद्गलद्रव्य अचेतन है। रस, स्पर्श, वर्ण, गन्ध गुणों से सहित है। अणु और स्कन्ध के भेदों से अनेक प्रकार का है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आताप ये सब उस पुद्गल द्रव्य की पर्याय जाननी चाहिए। गति में परिणत जीव और पुद्गलों के गमन में सहकारी धर्म द्रव्य है। वह धर्म द्रव्य निष्क्रिय है, अखण्ड है, एक द्रव्य है और पूरे लोक में फैला हुआ है। स्थिति अर्थात ठहरने के परिणाम से परिणत जीव,और पुद्गलों की स्थिति में सहकारी अधर्म द्रव्य है। वह अधर्म द्रव्य निष्क्रिय, अखण्ड, एक द्रव्य है और लोक में फैला हुआ है। ऐसा जानना चाहिए। आकाश द्रव्यों को अवकाश देने के योग्य है, एक है, अखण्ड है, निष्क्रिय है। और वह लोक और अलोक में फैला हुआ जानना चाहिए। काल द्रव्य लोकाकाश के प्रति प्रदेश पर स्थित है। अणु के समान है, सभी द्रव्यों में परिणमन का कारण है। वह काल द्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं। समय, निमेष, घड़ी, घंटा, वर्ष, युग आदि अनन्त काल की पर्यायों के साथ उस काल द्रव्य को जानना चाहिए। सभी द्रव्य अपने-अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं फिर भी उत्पाद,व्यय व ध्रौव्य परिणाम से सहित है। सदाकाल अपने स्वभाव से ही रहते हैं। काल द्रव्य को छोड़कर के पाँच द्रव्य पँचास्तिकाय की संज्ञा से जाने जाते हैं। इसी प्रकार जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व हैं यह जीव के मोक्षमार्ग के स्वरूप को और संसारमार्ग के स्वरूप इस्तामलक सदृश स्पष्ट दिखा देते हैं। इस प्रकार अभूतपूर्व तत्त्व ज्ञान से युक्त जिनागम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग के भेद से चार प्रकार का है। विषय के भेद से इन चार अनुयोगों का विभाजन किया है। उसमें–

(१) प्रथमानुयोग में–तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण बलदेव आदि ६३ शलाका पुरुषों के साथ उस काल सम्बन्धी अन्य अनेक महापुरुषों के चारित्र का, उनके पूर्व भवों का, पुण्य पाप के फल का और उनकी आगामी परिणति का वर्णन किया जाता है। **(२) करणानुयोग में**–लोकाकाश का और अलोकाकाश का, युग परिवर्तन का, चार गति के जीवों का, आयु, आवास आदि का, संख्यात, असंख्यात, अनन्त गणना से सहित सभी पदार्थों का वर्णन होता है। **(३) चरणानुयोग में**–मुनि-श्रावक धर्म का वर्णन किया जाता है। **(४) द्रव्यानुयोग में**–जीवादि सात तत्त्व, दोनों नय की प्रमुखता से वर्णन होता है।

इस प्रकार का प्रवचन अनादि भी है और सादि भी है जो बीज और वृक्ष के समान जानना चाहिए। सत्य ही है–"**बीज वृक्ष के क्रम से कथंचित् अनादि और कथंचित् सादि जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ शास्त्र है जिस शास्त्र के द्वारा अनन्त जीव संसार समुद्र के पार हुए हैं उस प्रवचन को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।"(तीर्थंकर भावना)** ❑ ❑ ❑

(१४) आवस्सयापरिहीणभावणा

छण्हाणं आवस्सयकिरियाणं जहाकालं करणं आवस्सयापरिहीणभावणा भणिदा। ताणि आवासयाणि समणाणं सावणाणं च पुहरूवेण कहिदाणि जिणागमे। तत्थ सामाइयं थवो वंदणा पडिकमणं पच्चक्खाणं काउसग्गो चेदि छहआवासयाइं समणाणं करणिज्जं। तत्थ तिसु संझासु समदापमुहभावेहिं णियप्पभावणाए परमप्पभावणाए वा पणिहाणं सामाइयं णाम। चउवीसतितित्थयराणं पुह-पुह थुदी थवो णाम। एयतित्थयरस्स पमुहेण कदथुदी वंदणा णाम। अतीदकालदोसाणं परिहरणं पडिक्कमणं। आगामिकालदोसाणं परिहरणं पच्चक्खाणं। उच्छासेण णमोक्कारकरणं जिणुगुणचिंतणं वा काउसग्गो। तहेव देवपूया गुरुउवासणा, सज्झाओ संजमो तवो दाणं चेदि छहआवासयाइं सावयाणं करणिज्जं। तत्थ जलचंदणादियट्ठविहदव्वेहिं जिणिंददेवस्स पडिदिणं पादो पूयाकरणं देवपूया। णिग्गंथगुरूणं पच्चक्खे परोक्खे य गुणोच्चारणं अट्ठदव्वेहि पुयाकरणं च गुरुउवासणा। जिणुत्तसत्थाणं पढणं पाढणं वा सज्झाओ। जीवदयाए मणवयणकायाणं पवुत्ती संजमो। कम्मि दिणे लवणस्स कम्मदिणे महुररसस्स इच्चेवमादिरूवेण चागो, अणेयविहवदादिसंबंधिउववासादिकरणं तवो णाम। चउव्विहदाणेण अज्जिदधणस्स परिच्चागो दाणं णाम। छसु आवासएसु परिहाणी जिणाणाए विरोहिणी तेण सावगो वा समणो वा केण वि कारणेण तेसु विराहणं ण कुणदि। जिणाणाए उल्लंघणेण सम्मत्तस्स विणासो होइ। लोइयववहारकारणेण अज्झयणलोहेण णियभत्तासासणलोहेण य तेसु परिहाणी जायेदि। तेसु कुणमाणे वि चित्तवासंगो, संगेदेण वत्तालावो, अण्णत्थ मणप्पहिहाणं इच्चेवमादिदोसा वि परिहाणित्तणेण णायव्वा। सच्चमेव-

आवस्सयपरिहीणो जिणण्णाविराहगो हवे साहू।
सो सम्मत्तविहूणो पावेज्ज किमप्पसंसाए॥ ति.भा. १०८॥

एवंविहाओ किरियाओ ववहारगयाओ वि णिच्छयस्स कारणभूदाओ सम्मत्तसहिदादो। ववहारावस्सपरिपालणेण णिव्वियप्पो साहू अप्पमत्तादिगुणट्ठाणेसु आरोहणं करिय केवलणाणं लहेदि। वुत्तं च-

सव्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं य काऊण।
अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्जय केवली जादा॥ णि.सार १५८॥

पडिक्कमणपच्चक्खाणादिकिरियाओ दव्वभेदेण दुविहाओ अणुट्ठेदव्वाओ। दव्वपडिक्कमणं दव्वपच्चक्खाणं णिमित्तभूदं भावपडिक्कमणं भावपच्चक्खाणं णेमित्तियभूदं रायादिविहावभावविणासणुवलंभादो। तेणेव वीयरायत्तं। एवं पडिदिवसं कदाणुट्ठाणं तित्थयरणामकम्मं पबंधेइ।

❑ ❑ ❑

(१४) आवश्यक अपरिहाणि भावना

छहों आवश्यक क्रियाओं का यथाकाल करना आवश्यक अपरिहाणि भावना कही है वे आवश्यक श्रमणों के और श्रावकों के पृथक् रूप से जिनागम में कहे गये हैं। उनमें सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग यह छह आवश्यक श्रमणों के द्वारा करने के योग्य है। तीनों संध्याओं में समता की प्रमुख भावनाओं से निजात्मा की भावना अथवा परमात्मा की भावनाओं में प्रणिधान करना **सामायिक** है। चौबीस तीर्थंकरों की पृथक्-पृथक् स्तुति करना **स्तवन** है। एक तीर्थंकर की प्रमुखता से स्तुति करना **वन्दना** है। अतीत काल के दोषों का परिहार करना **प्रतिक्रमण** है। आगामी काल के दोषों का परिहार करना **प्रत्याख्यान** है। उच्छ्वास से णमोकार करना अथवा जिनेन्द्र भगवान के गुणों का चिन्तवन करना **कायोत्सर्ग** है। इसी प्रकार देवपूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह आवश्यक श्रावकों को करना चाहिए। उसमें जल, चंदन आदि आठ प्रकार के द्रव्यों से जिनेन्द्र देव की प्रतिदिन प्रातः पूजा करना **देव-पूजा** है। निर्ग्रन्थ गुरु की प्रत्यक्ष में और परोक्ष में गुणों का उच्चारण करना तथा आठ द्रव्यों से उनकी पूजा करना **गुरु-उपासना** है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए शास्त्रों का पढ़ना और पढ़ाना **स्वाध्याय** है। जीव दया में मन-वचन-काय की प्रवृत्ति करना **संयम** है। किसी दिन का लवण का किसी दिन मधुर रस का इत्यादि रूप से त्याग करना और अनेक प्रकार के व्रत आदि सम्बन्धी उपवास आदि करना **तप** है। चार प्रकार के दान से अर्जित धन का परित्याग करना **दान** है। छहों आवश्यकों में कमी होना जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा के विरुद्ध है इसलिए श्रावक अथवा श्रवण उनमें विराधना नहीं करता है। जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा के उल्लंघन से सम्यक्त्व का विनाश होता है। लौकिक व्यवहार के कारण से, अध्ययन के लोभ से और निज भक्तों को आश्वासन देने के लोभ से इन आवश्यकों में परिहानि हो जाती है। आवश्यकों के करने पर भी चित्त में व्यासंग होना, संकेत से वार्तालाप करना, अन्यत्र मन का लगना इत्यादि दोष भी परिहानि रूप से ही जानने चाहिए। सत्य ही है-

''आवश्यकों से हीन साधु जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का विराधक हो जाता है। वह सम्यक्त्व से रहित हुआ मात्र आत्म प्रशंसा से क्या प्राप्त कर लेगा?''( )

इस प्रकार की क्रियाएँ व्यवहार गत होते हुए भी निश्चय के लिए कारण भूत हैं क्योंकि वह सम्यक्त्व से सहित होती हैं।

व्यवहार रूप आवश्यक का परिपालन करने से साधु निर्विकल्प होता है और वह अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में आरोहण करके केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। नियमसार में कहा भी है-

''जितने भी पुराण पुरुष हुए हैं वे सभी इसी प्रकार के आवश्यकों को करके अप्रमत्त आदि स्थानों को प्राप्त करके केवली हुए है।'' ( )

प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि क्रियाएँ द्रव्य, भाव के भेद से दो प्रकार की हैं जो अनुष्ठान करने के योग्य हैं। द्रव्य प्रतिक्रमण और द्रव्य प्रत्याख्यान निमित्तभूत हैं और भाव प्रतिक्रमण, भाव प्रत्याख्यान ये नैमित्तिक है। क्योंकि द्रव्य के निमित्त से रागादि विभाव भावों का विनाश देखा जाता है। इस नैमित्तिक भाव प्रतिक्रमण से ही वीतरागता उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रतिदिन किया हुआ अनुष्ठान तीर्थंकरनाम कर्म का बन्ध करता है।

❑ ❑ ❑

(१५) मग्गपहावणभावणा

णाणतवजिणपूयादिविहिणा धम्मपयासणं मग्गपहावणा णाम। जेण कारणेण परसमयाणं पहावो मंदो होदूण जणा अण्णाणतिमिरं विणासिय सम्मं मग्गं पावेदि ताणि कारणाणि कादव्वाणि। सावयेहि पमुहेण जिणिंदपूयाकल्लाणवदमहोस्सवविहाणादियणुट्ठाणं आढप्पिज्जइ। समणेहि पमुहेण सिद्धंतणायादिबहुविहणाणेण तवेण य कुणिज्जइ। जदि मग्गपहावणाए समत्थो ण होज्ज तो मए अप्पहावणा ण हवे त्ति भएण सया णियधम्मपालणा कादव्वा। जिणतित्थजिणवाणीरक्खणेण वि मग्गपहावणा होदि। जिणतित्थाणं पुणुरुद्धारं णवतित्थणिम्मावणं वि धम्मसंसकियं वड्ढेदि। तहेव जिण्णसत्थाणं उद्धरणं णवरूवेण पयासणद्वारेण होदि। सच्चमेव–

रइऊण णवं सत्थं जिण्णं रक्खेदि पुण पयासेदि।
सुत्तत्थमणुसरंतो मग्गपहावणापरो सो हि॥

पुव्वाइरियेहि सव्वसत्थाणि पाइयभासाए रचिदाणि। आइरियाणं एयठाणादो ठाणंतरगमणेण सा भासा वि सोरसेणजणवदादो दक्खिणभागदेसे सयं गदा। तेण पाइयभासाए पढणं पाढणं रयणाकरणं वि मग्गपहावणाए कारणं मूलभासापरिचएण विणा धम्मगंथमाहप्पस्स अभावादो। जिणुत्तसत्थेसु ववहारणिच्छयाणं दोण्हं णयाणं वण्णणं कदं। जदि एगणयस्स अवलंबणेणेव वक्खाणं तच्चकहणं पमुहेण कीरइ तो एयंतमदपसंगादो जिणमग्गस्स अप्पहावणा होदि। सव्वाणि वत्थूणि अणेयंतधम्मजुदा सादवादेण सत्तभंगाहारेण य कहणजोग्गा होंति। तेणेव वुत्तं–

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं॥ (आ.ख्या.टी.)

णिच्छयणयस्स विसओ अणुभूइपमुओ झाणकाले णिग्गंथेहि उवलद्धो होदि तदभावे ववहारणयस्स विसओ सव्वकाले अज्झयणचिंतणमणणपमुहो सव्वेहिं उवलद्धो होइ त्ति जाणिय जो वट्टेदि सो णिव्विवादेण मज्झत्थो होदूण णियधम्मजिणधम्ममग्गं उवलद्धेइ। जो जिणमग्गं सद्दहदि सो कलहेण विवादेण य मग्गं ण दूसेदि। धीरो वीरो सव्वगंथाणं णाणी णायविसारदो पंथवामोहविमुक्को हि णिग्गंथमोक्खमग्गं पयासेइ। जिणिंदसेट्ठवारिसेणमुणिपहुडिसरिसो सो उवगूहणट्ठिदिकरणंगेहि सह अट्ठंगधारगो वि होदि। कया वि समणेहि मंततंतकारणाणि जिणमग्गस्स पहावणाकारणेण वि ण अवलंबिज्जाणि जिणसुत्तेसु पडिसेहादो।

❑ ❑ ❑

(१५) मार्गप्रभावना भावना

ज्ञान,तप,जिन पूजा आदि विधि से धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है। जिस कारण से पर समय (अन्य मती) का प्रभाव जीव अज्ञान तिमिर का विनाश करके सम्यक् मार्ग की प्राप्ति करते हैं वे सब कारण करने चाहिए। श्रावकों के द्वारा प्रमुख रूप से जिनेन्द्र भगवान की पूजा, कल्याण, व्रत महोत्सव, विधान आदि अनुष्ठान करने चाहिये। श्रमणों के द्वारा प्रमुख रूप से सिद्धान्त, न्याय आदि बहुत प्रकार के ज्ञान के द्वारा और तप के द्वारा मार्ग प्रभावना करनी चाहिए। यदि मार्ग की प्रभावना में समर्थ न हो तो मेरे द्वारा प्रभावना न हो इस प्रकार के भय से सदा निजधर्म का पालन करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान के तीर्थ और जिनवाणी की रक्षा से भी मार्ग की प्रभावना होती है। जिन तीर्थों का पुनः उद्धार करना और नव तीर्थों का निर्माण करना भी धर्म संस्कृति की वृद्धि करता है। इसी प्रकार से जिन शास्त्रों का उद्धार करना और नये रूप से शास्त्रों का प्रकाशन करना भी धर्म संस्कृति की वृद्धि करता है। सत्य ही है–

''जो जीव जिनेन्द्र भगवान के शास्त्रों की नयी रचना करके उनकी रक्षा करता है, उनका पुनः प्रकाशन करता है, वह सूत्र और अर्थ का अनुसरण करता हुआ मार्ग प्रभावना में तत्पर होता है।'' (तीर्थंकर भावना)

पूर्वाचार्यों के द्वारा सभी शास्त्र प्राकृत भाषा में रचे गये हैं। आचार्यों का एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन होने से वह प्राकृत भाषा भी शौरसेन जनपद से दक्षिण देश में स्वयं चली गयी। इसी कारण से प्राकृत भाषा का पठन-पाठन तथा रचना करना भी मार्ग प्रभावना के लिए कारण है क्योंकि मूल भाषा के परिचय के बिना धर्म ग्रंथों की महिमा नहीं हो पाती है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए शास्त्रों में व्यवहार और निश्चय दोनों नयों का वर्णन किया गया है। यदि एक नय के अवलम्बन से ही व्याख्यान और तत्त्व का कथन प्रमुखता से किया जाता है तो एकान्त मत का प्रसंग उपस्थित होता है जिससे जिन मार्ग की अप्रभावना होती है। सभी वस्तु अनेकान्त धर्म से युक्त हैं जो स्याद्वाद के द्वारा और सप्तभंग के आधार से ही कथन योग्य होती हैं। इसलिए कहा गया है–

''यदि जिनेन्द्र भगवान के मत की प्रभावना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को नहीं छोड़ना। क्योंकि एक के बिना (व्यवहार के बिना) तीर्थ का विच्छेद हो जाता है। और अन्य (निश्चय के बिना) तत्त्व का विच्छेद हो जाता है।''

निश्चयनय का विषय अनुभूति प्रमुख है जो ध्यान काल में निर्ग्रन्थों के द्वारा ही उपलब्ध होता है और उसके अभाव में व्यवहार नय का विषय ही सर्वकाल अध्ययन, चिन्तन, मनन की प्रमुखता से सभी के द्वारा उपलब्ध होता है। इस प्रकार से जानकर के जो प्रवृत्ति करता है वह निर्विवाद रूप से मध्यस्थ होकर के निज धर्म और जिनधर्म के मार्ग को प्राप्त कर लेता है। जो जिनेन्द्र भगवान के मार्ग का श्रद्धान करता है वह कलह से और विवाद से मार्ग को दूषित नहीं करता है। धीर , वीर, सर्वग्रन्थों का ज्ञानी, न्याय विशारद, पन्थ के व्यामोह से रहित ही निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग को प्रकाशित करता है। जिनेन्द्र सेठ, वारिसेण मुनि आदि के समान वह उपगूहन, स्थितिकरण आदि के द्वारा आठ अंगों को धारण करने वाला भी होता है। कभी भी श्रमणों के द्वारा मन्त्र-तन्त्र के कारण से जिनेन्द्र मार्ग की प्रभावना के कारण से उनका अवलम्बन नहीं लेना चाहिए क्योंकि जिनसूत्रों में उनका प्रतिषेध उपलब्ध होता है।

❑ ❑ ❑

(१६) पवयणवच्छलत्तभावणा

जिणिंदस्स पक्कट्ठं वयणं पवयणं तं मण्णंति ते पवयणा जिणधम्माणुणेहा। तेसु धेणुवच्छोव्व णिच्छलणेहो पवयणवच्छलत्तभावणा। साहम्मियाणं अणादरस्साकरणं वि वच्छलत्तं। सव्वेसिं हिदस्स भावणाए पवट्टणं वि वच्छलत्तं। वच्छलत्तं ण खलु परोप्परालावो परोप्परवत्थूणं गहणविसग्गो य। अहिंसाए चित्तम्मि पदिट्ठिदे सदि वच्छलत्तं सयमेव पवहदि। तेण सया मणवयणकायेहि हिंसा ण हवे त्ति पवयट्टणं खलु णिच्छएण वच्छलत्तं। पसत्थभावेण कदरागो गुणवुड्ढीए कारणं होदि। अमूए भावणाए पुव्वुत्तसयलभावणाणं समावेसो दिस्सदि। विणओ वच्छलो साहुसमाहिकरणं आइरियादिपरमेट्ठिणो भत्ती इच्चादि सव्वं एयट्ठं। सच्चमेव-

विणओ य वच्छलत्तं परोप्परं वत्थुदो दु एयट्ठं।
एक्केण विणा णाण्णं तम्हा दोण्णि वि समासेज्ज॥ ति.भा. १२८॥

विण्हुकुमारमुणी धम्मवच्छलेणेव मुणिसंघस्स उवसग्गणिवारणे पवट्टेइ। जे जीवा एइंदियादिछक्कायजीवाणं रक्खं दयाहियएण कुणंति ते वि सव्वसत्तेसु मेत्तिं उव्वहंति। पेम्मं वच्छलत्तं मित्ती पसत्थरागो करुणा चेदि एयट्ठं। एवंविहवच्छलेणेव जे जीवा पुव्वभवे तब्भवे वा तित्थयरणामकम्मं पबंधंति ते एव अण्णभवे तब्भवे वा सव्वजीवाणं संसारदुक्खादो उद्धरणे सहजाकिट्टिमणेहेण पवट्टंति। '**विस्सकल्लाणस्स भावणाफलं खलु तित्थयरभवणं।**' जहा किसगो सव्वप्पाणिहिदभावेण सस्समुव्वादेदि तहा संसारे संसरताणं सव्वजीवाणं अप्पसुहस्स पत्ती हवे त्ति पवयणवच्छलत्तं। जेण पयारेण सव्वजीवेसु परोप्परं मेत्ती हवे, अप्पकल्लाणं पडि रुई हवे तदुवदेसेण हिंसाहंकाररहिरहिदएण, जीवरक्खणपरेण काएण जो णियपरस्स हिदं करेदि सो पवयणवच्छलजुत्तो होइ।

❑ ❑ ❑

जिणवाणी महदीवो जगदंधयारणासणे खलु एगो।
जिणवयणं पढमाणो लहदि पयासं खुअप्परूवस्स॥
—अनासक्तयोगी३/५

(१६) प्रवचन वत्सलत्व भावना

जिनेन्द्र भगवान के प्रकृष्ट वचन प्रवचन हैं उनको जो मानता है व प्रवचन अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए धर्म में स्नेह रखने वाले कहे जाते हैं। उन प्रवचनों में गाय वत्स के निश्चल स्नेह होना प्रवचन वत्सलत्व भावना है। साधर्मी का अनादर नहीं करना वत्सलपना है। सभी में हित की भावना से प्रवृत्ति करना वत्सलत्व है। वत्सलत्व केवल परस्पर में बोलचाल ही नहीं है, और ना ही परस्पर में वस्तु के आदान-प्रदान का नाम वत्सलत्व है। अहिंसा का चित्त में प्रतिष्ठित हो जाने पर वत्सलत्व स्वयं ही प्रवाहित होता है। इसलिए सदैव मन-वचन-काय के द्वारा हिंसा न हो इस प्रकार से प्रवर्तन करना ही निश्चय से वत्सलत्व है। प्रशस्त भाव से किया गया राग गुणों की वृद्धि में कारण होता है। इस भावना में पूर्वोक्त सकल भावनाओं का समावेश देखा जाता है। विनय वात्सल्य, साधु-समाधिकरण, आचार्यादि परमेष्ठियों की भक्ति इत्यादि ये सभी एकार्थवाची हैं। सत्य ही है-

''विनय और वत्सलत्व ये परस्पर में वस्तुतः एकार्थवाची हैं क्योंकि एक के बिना दूसरी चीज नहीं ठहरती है इसलिए दोनों का ही आलम्बन लेना चाहिए।''

विष्णुकुमारमुनि धर्म वत्सलत्व के भाव से ही मुनि संघ के उपसर्ग निवारण में प्रवृत्ति किए हैं। जो जीव एकेन्द्रिय आदि छह काय के जीवों की रक्षा दयाहृदय के साथ करता है वे जीव भी सभी जीवों में मैत्री भाव को धारण करते हैं। प्रेम, वत्सलत्व, मैत्री, प्रशस्त, राग, करुणा ये सभी एकार्थवाची हैं। इस प्रकार के वत्सल भाव से ही जो जीव पूर्वभव में अथवा उसी भव में तीर्थंकर नाम कर्म को बांधते है वे ही अन्य भव में अथवा उसी भव में जीवों को संसार के दु:ख से उद्धार करने में सहज अकृत्रिम स्नेह के साथ प्रवृत्त होते हैं। विश्व कल्याण की भावना का फल ही तीर्थंकर होना है। जैसे किसान सभी प्राणियों के हित की भावना से फसल उत्पन्न करता है उसी प्रकार से संसार में भ्रमण करते हुए सभी जीवों को आत्मसुख की प्राप्ति हो इस प्रकार की भावना ही प्रवचनवत्सलत्व है। जिस प्रकार से सभी जीवों में परस्पर में मैत्री होवे, आत्म कल्याण की रुचि होवे उसी प्रकार के उपदेश के द्वारा हिंसा, अहंकार, से रहित हृदय के द्वारा जीव रक्षा की तत्परता के द्वारा काय से जो निज और पर का हित करता है वह प्रवचन वत्सलत्व से युक्त होता है।

❑ ❑ ❑

जगत् के अंधकार को नष्ट करने के लिए जिनवाणी एक महा दीपक है।
जिनवचनों को पढ़ने वाला आत्मस्वरूप के प्रकाश को अवश्य प्राप्त करता है॥५॥ अ.यो.

परिशिष्ट

ऐतिहासिक पुरुष

प्रथम—खण्ड

जिणदत्तसेट्ठ	–	जिनदत्त सेठ	कथा १
विज्जुहपह	–	विद्युतप्रभ	,,
कणयपहराया	–	कनकप्रभ	,,
कणयाराणी	–	कनका रानी	,,
अंजणचोर	–	अंजन चोर	,,
वसुवद्धण	–	वसुवर्धन	कथा २
लक्खीमई	–	लक्ष्मीमती	,,
अणंतमई	–	अनंतमती	,,
धम्मकित्तिआइरिय	–	धर्मकीर्ति आचार्य	,,
कुण्डलमण्डिअ	–	कुण्डलमण्डित	,,
सुकेसी	–	सुकेशी	,,
पुप्फयबंजारिण	–	पुष्पक बंजारा	,,
सिंहराया	–	सिंह राजा	,,
पियदत्तसेट्ठ	–	प्रियदत्त सेठ	,,
कमलसिरिअज्जिया	–	कमलश्री आर्यिका	,,
उड्डायणराया	–	उड्डायन राजा	कथा ३
वासवदेव	–	वासव देव	,,
वड्ढमाणभयवंत	–	वर्द्धमान भगवान	,,
पहावदी	–	प्रभावती	,,
जसोहर	–	यशोधर	कथा ३
सुसीमा	–	सुसीमा	,,
सुवीर	–	सुवीर	,,
जिणिंदभत्त	–	जिनेन्द्रभक्त	,,
सिरिपारसणाह	–	श्रीपारसनाथ	,,
सूरिय	–	सूर्य	,,
सेडिग	–	श्रेणिक	कथा ५
चेलिणी	–	चेलिनी	,,
वारिसेण	–	वारिसेण	,,
सिरिकित्ति सेट्ठिणी	–	श्रीकीर्ति संठानी	,,
विज्जुअचोर	–	विद्युतचोर	,,
सूरसेण	–	सूरसेन	,,
अग्गिभूदमंति	–	अग्निभूतमंत्री	,,
पुप्फडाल	–	पुष्पडाल	,,
पारसदेव	–	पारसदेव	,,
समुद्दजत्त	–	समुद्रदत्त	,,
सेडिग	–	श्रेणिक	कथा ६
चेलिणी	–	चेलिनी	,,
वारिसेण	–	वारिसेण	,,
सिरिकित्ति सेट्ठिणी	–	श्रीकीर्ति संठानी	,,
विज्जुअचोर	–	विद्युतचोर	,,
सूरसेण	–	सूरसेन	,,
अग्गिभूदमंति	–	अग्निभूतमंत्री	,,
पुप्फडाल	–	पुष्पडाल	,,
सिरिवम्मा	–	श्री वर्मा	कथा ७
बली	–	बली	,,
बहप्फई	–	बृहस्पति	,,
पहलाद	–	प्रहलाद	,,
णमुई	–	नमुचि	,,
अकंपणाइरय	–	अकंपनाचार्य	,,
सुदसायरमुणि	–	श्रुतसागरमुनि	,,
महापउम	–	महापद्म	,,
लच्छीमई	–	लछमीमती	,,

पउम	–	पद्म	कथा ७
विण्हू	–	विष्णु	,,
सुदसायरचंदइरिय	–	श्रुतसागरचंद आचार्य	,,
सिंहबल	–	सिंहबल	,,
पुप्फदंतखुल्लग	–	पुष्पदंत क्षुल्लक	,,
विण्हुकुमारमुणी	–	विष्णुकुमारमुनि	,,
बल	–	बल	कथा ८
गरुण	–	गरुड़	,,
सोमदत्त	–	सोमदत्त	,,
सुभूदि	–	सुभूति	,,
दुम्महराय	–	दुर्मुख राजा	,,
जण्णदत्ता	–	यज्ञदत्ता	,,
सुमित्ताइरिय	–	सुमित्र आचार्य	,,
वज्जकुमार	–	वज्रकुमार	,,
विमलवाहण	–	विमलवाहन	,,
पवणवेगा	–	पवनवेगा	,,
गरुडवेग	–	गरुड़वेग	,,
दिवायरविज्जाहर	–	दिवाकर विद्याधर	,,
दिवायरदेव	–	दिवाकर देव	,,
सोमदत्त	–	सोमदत्त	,,
पूदिगंध	–	पूतिगंध	,,
सायरदत्त	–	सागरदत्त	,,
समुद्दत्तावणिदा	–	समुद्रदत्त की वनिता	,,
उव्विला	–	उर्विला	,,
महाबल	–	महाबल	कथा ९
बल	–	बल	,,
जिणदेव	–	जिनदेव	कथा १०
धणदेव	–	धनदेव	,,
वसुपाल	–	वसुपाल	कथा ११
जिणदत्तसेट्ठ	–	जिनदत्त सेठ	,,
जिणदत्ता	–	जिणदत्ता	,,
णीली	–	नीली	,,
समुद्दत्त	–	समुद्रदत्त	,,
सायरदत्त	–	सागरदत्त	,,
सायरदत्ता	–	सागरदत्ता	,,
सोम्मपह	–	सोमप्रभ	कथा १२
उसहदेव	–	ऋषभदेव	,,
भरहचक्कि	–	भरत चक्रवर्ती	,,
सुलोयणा	–	सुलोचना	,,
रइप्पह	–	रतिप्रभ	,,
णमिविज्जाहर	–	नमि विद्याधर	,,
लोयपाल	–	लोकपाल	कथा १३
धणवाल	–	धनपाल	,,
धणसिरी	–	धनश्री	,,
सुंदरीणाम	–	सुंदरी नाम	,,
गुणवाल	–	गुणपाल	,,
सिंहसेण	–	सिंहसेन	कथा १४
सिरिभूई	–	श्रीभूति	,,
सच्चघोस	–	सत्यघोष	,,
णिउणमइ	–	निपुणमती	,,
सिंहरह	–	सिंहरथ	कथा १५
अवसरजीव	–	अपसरजीव	,,
कणयरह	–	कनकरथ	कथा १६
कणयमाला	–	कनकमाला	,,
जमदंड	–	यमदण्ड	,,

भवदत्त	–	भवदत्त	कथा १७
धणदत्ता	–	धनदत्ता	,,
लुब्भदत्त	–	लुब्धदत्त	,,
समस्सुणवणीद	–	श्मश्रुनवनीत	,,
सिरिसेण	–	श्रीसेन	कथा १८
सिंहणंदिदा	–	सिंदनन्दिता	,,
अणंदिदा	–	अनिंदिता	,,
इंद	–	इन्द्र	,,
उविंद	–	उपेन्द्र	,,
सच्चगी	–	सत्यकी	,,
जंबूणाम	–	जम्बू नाम	,,
सच्चभामा	–	सत्यभामा	,,
रुद्दभट्ट	–	रद्रभट्ट	,,
कपिल	–	कपिल	,,
संतिणाहतित्थयर	–	शांतिनाथ तीर्थंकर	,,
उग्गसेण	–	उग्रसेन	कथा १९
धणसिरी	–	धनश्री	,,
वसहसेणा	–	वृषभसेना	,,
रूववई	–	रूपवती	,,
रणपिंगलमंति	–	रणपिंगल मंत्री	,,
पुढवीचंद	–	पृथ्वीचंद्र	,,
णारायणदत्त	–	नारायणदत्त	,,
गोविंद	–	गोविन्द	कथा २०
पउमणंदि	–	पद्मनंदी	,,
धम्मिल	–	धम्मिल	कथा २१
समाहिगुत्त	–	समाधिगुप्त	,,
तिगुत्त	–	त्रिगुप्त	,,

सेणिग	–	श्रेणिक	कथा २२
णागदत्त	–	नागदत्त	,,
भवदत्ता	–	भवदत्ता	,,
गोयमसामि	–	गौतमस्वामी	,,
पजावाल	–	प्रजापाल	कथा २३
सिद्धत्थ	–	सिद्धार्थ	,,
जयावई	–	जयावती	,,
सुकोसल	–	सुकोशल	,,
णयंधर	–	नयनधर	,,
सुणंदा	–	सुनंदा	,,
णंद	–	नंद	कथा २४
कावि	–	कावि	,,
सुबंधु	–	सुबन्धु	,,
सकटाल	–	शकटाल	,,
चाणक्क	–	चाणक्य	,,
चंदगुत्तमोरिय	–	चंद्रगुप्तमौर्य	,,
महीधरमुणि	–	महीधरमुनि	,,
सुमित्तराया	–	सुमित्रराजा	,,
सुबंधुमंती	–	संबन्धु मंत्री	,,

द्वितीय–खण्ड

गुणणिही	–	गुणनिधि	कथा १
मिदुमई	–	मृदुमति	,,
सिवणंदी	–	शिवनंदी	कथा ४
वज्जजंघ	–	वज्रजंघ	कथा ६
सिरिमई	–	श्रीमती	,,
सेयंस	–	श्रेयांस	,,
बाहुबली	–	बाहुबली	,,

उसहसेण	–	वृषभसेन	कथा ६
अणंतविजय	–	अनन्तविजय	,,
अणंतवीरिय	–	अनंतवीर्य	,,
अच्चुअ	–	अच्युत	,,
वीर	–	वीर	,,
वरवीर	–	वरवीर	,,
मंदोदरी	–	मंदोदरी	,,
राया मओ	–	राजा मय	,,
धम्मरुई मुणि	–	धर्मरुचि	कथा ८
गोयमदेव	–	गौतमदेव	,,
गोयमगणहर	–	गौतमदेव	,,
आइरियसमंतभद्दो	–	आचार्य समंतभद्र	कथा १०
चंदप्पह	–	चंद्रप्रभु	,,
अवरजाइयचक्कवट्टी	–	अपराजित चक्रवर्ती	,,
विमलवाहणभयवंत	–	विमलवाहन भगवान	,,
णेमिणाह	–	नेमिनाथ	,,
सुमित्त	–	सुमित्र	कथा ११
धरसेणाइरिय	–	धरसेन आचार्य	,,
भूदबलि	–	भूतबलि	,,
पुप्फदंत	–	पंष्पदंत	,,
जिणवालिय	–	जिनपालित	,,
गुणहराइरिय	–	गुणधरआचार्य	,,
आइरियकुंदकुंददंव	–	आचार्य कुंदकुंद देव	,,
आइरियपुज्जपाददेव	–	आचार्य पूज्यपाद देव	,,
अकलंकदेव	–	अंकलंक देव	,,
इंदभूदि	–	इंद्रभूति	कथा १३

❑ ❑ ❑

भोगोलिक शब्द

प्रथम–खण्ड

राजगिहणयर	–	राजगृह नगर	कथा १
मगहदेस	–	मगधदेश	,,
सुमेरुपव्व	–	सुमेरु पर्वत	,,
सुदंसणमेरू	–	सुदर्शन मेरु	,,
केलासपव्वद	–	कैलासपर्वत	,,
अंगदेस	–	अंगदेश	कथा २
चंपाणयरी	–	चंपानगरी	,,
किण्णरपुरणयर	–	किन्नपुरनगर	,,
अजोद्धाणयरी	–	अयोध्यानगरी	,,
सहस्सारसग्ग	–	सहस्रार स्वर्ग	,,
णंदीसर	–	नंदीश्वर	,,
रोरयपुरणयर	–	रौरवपुर	कथा ३
सुरट्ठदेस	–	सुराष्ट्र देश	कथा ५
पाडलिपुत्त	–	पाटलिपुत्र	,,
पुव्वगोडदेस	–	पूर्वगौड़ देश	,,
तमिलित्तणयर	–	ताम्रलिप्तनगर	,,
मगहदेस	–	मगधदेश	कथा ६
पलासकूडगाम	–	पलाशकूट ग्राम	,,
अवंतिदेस	–	अवंतीदेश	कथा ७
उज्जइणीणयर	–	उज्जयिनी नगर	,,
कुरुजांगलदेस	–	करुजांगल देश	,,
हत्थिणागपुर	–	हस्तिनागपुर	,,
कुंभपुर	–	कुंभपुर	,,
मिहिलाणयरी	–	मिथिलानगरी	,,

मेरु	–	सुमेरु पर्वत	कथा ७
माणुसोत्तरपव्वद	–	मानुषोत्तर पर्वत	,,
आदावणगिरी	–	आतापन गिरि	,,
धरणिभूसणसेल	–	धरणीभूषण पर्वत	,,
णाहगिरिपव्वद	–	नाभिगिरि पर्वत	कथा ८
कणयणयर	–	कनकनगर	,,
हेमंतसेल	–	हेमंतपर्वत	,,
महुराणयर	–	मथुरा नगर	,,
दक्खिणगुहा	–	दक्षिण गुफा	,,
सुरम्मदेस	–	सुरम्यदेश	कथा ९
पोदणपुर	–	पोदनपुर	,,
जंबूदीव	–	जम्बूद्वीप	कथा १०
पुक्खलावईदेस	–	पुष्कलावतीदेश	,,
पुण्डीकिणी	–	पुण्डरीकनी	,,
लाडदेस	–	लाट देश	कथा ११
भिगुकच्छणयर	–	भृगुकच्छनगर	,,
कुरुजंगलदेस	–	कुरुजांगलदेश	कथा १२
हत्थिणागपुर	–	हस्तिनागपुर	,,
कइलासपव्वद	–	कैलाश पर्वत	,,
सिंहपुरणयर	–	सिंहपुर नगर	कथा १४
पउमखंडणयर	–	पद्मखण्डनगर	,,
वच्छदेस	–	वत्सदेश	कथा १५
कोसंबीणयरी	–	कौशाम्बी नगरी	,,
अहीरदेस	–	अहीर देश	कथा १६
अजोद्धा	–	अयोध्या	कथा १७
मलयदेस	–	मलयदेश	कथा १८
रयणसंचयपुर	–	रत्नसंचयपुर	,,
पाडलिपुत्त	–	पाटलिपुत्र	कथा १८
जणपद	–	जनपद	कथा १९
कावेरीपत्तण	–	कावेरीपत्तन	,,
वाराणसी	–	वाराणसी	,,
कुरुमणिगाम	–	कुरुमणि ग्राम	कथा २०
घडगाम	–	घट ग्राम	कथा २१
विंझाचल	–	विंद्याचल	,,
मगहदेस	–	मगधदेश	कथा २२
राजगिहणयर	–	राजग्रहनगर	,,
वइभारपव्वद	–	वैभारपर्वत	,,
मोग्गिलगिरि	–	मौद्‌गिल्यपर्वत	कथा २३
पाडलिपुत्त	–	पाटलिपुत्र	कथा २४
वणवासदेस	–	वनवास देश	,,
कोंचपुर	–	क्रौन्चपुर	,,

द्वितीय–खण्ड

अंकिलेसर	–	अंकलेश्वर	कथा ११
वणवासि-विसय	–	वनवासि देश	,,
दमिल	–	तमिल	,,

❑ ❑ ❑

शब्दकोश

प्रथम–खण्ड

किण्हपक्ख	–	कृष्णपक्ष	कथा १
मसाण	–	श्मशान	,,
आगास	–	आकाश	,,
अकिट्टिमजिणालय	–	अकृत्रिमजिनायल	,,
विजयड्ढपव्वद	–	विजयार्द्ध पर्वत	कथा २
पण्णलहुविज्जा	–	पर्णलघुविद्या	,,
राया	–	राजा	,,
अतिहि	–	अतिथि	,,
चउक्क	–	चौक	,,
साविगा	–	श्राविका	,,
णिब्बिदिगिंछागुण	–	निर्विचिकित्सागुण	कथा ३
विकिरियारिद्धी	–	विक्रिया ऋद्धि	,,
गलिदकुट्ठ	–	गलितकुष्ठ	,,
गिहंगण	–	गृह–आंगन	,,
पडिग्गहिद	–	पडगाहन	,,
णवहा	–	नवधा	,,
परिचरिया	–	परिचर्या	,,
भत्ति	–	भक्ति	,,
उच्चसर	–	उच्च स्वर	कथा ५
खुल्लय	–	क्षुल्लक	,,
महावराह	–	महातपस्वी	,,
सम्मादिट्ठी	–	सम्यग्दृष्टि	,,
जिणधम्मालु	–	जिनधर्मालु	कथा ६
उज्जाण	–	उद्यान	,,
सेट्ठिणी	–	सेठानी	,,
गिहरक्ख	–	गृहरक्षक	कथा ६
तक्कर	–	तस्कर चोर	,,
समक्ख	–	समक्ष	,,
मत्थय	–	मस्तक	,,
चंडाल	–	चाण्डाल	,,
पुप्फमाला	–	पुष्पमाला	,,
खीररुक्खं	–	क्षीरवृक्ष	,,
मसाणवेरग्गं	–	श्मशान वैराग्य	,,
गाण	–	गाना गीत	,,
उक्कंठिद	–	उत्कंठित	,,
माअर	–	माता	,,
आसण	–	आसन	,,
अंदेडर	–	अन्तःपुर	,,
जुवरायपद	–	युवराजपद	,,
परमट्ठतव	–	परमार्थ तप	,,
मगहसुंदरी	–	मगधसुंदरी	,,
एयस्सिं	–	एक बार	कथा ७
परोप्पर	–	परस्पर	,,
वत्तालाव	–	वार्तालाप	,,
णायरियजण	–	नागरिकजन	,,
पूजासामग्गि	–	पूजासामग्री	,,
णग्गसाहु	–	नग्नसाधु	,,
पत्तेय	–	प्रत्येक	,,
वंदणा	–	वंदना	,,
आसीवाद	–	आशीर्वाद	,,
अच्चंतिणिप्पहा	–	अत्यंत निस्पृह	,,
पट्ठाणसम	–	प्रस्थान समय	,,
उदर	–	पेट	,,

काउसग्ग	–	कायोत्सर्ग	कथा ७
आणा	–	आज्ञा	,,
मज्झपह	–	मध्यप्रदेश	,,
खंग	–	तलवार	,,
गद्दभारोहण	–	गर्दभारोहण	,,
दुग्ग	–	दुर्ग	,,
दुब्बल	–	दुर्बल	,,
वंछियवर	–	वांछित वर	,,
उस्सुगुत्त	–	उत्सुकता	,,
वेज्जावच्च	–	वैयावृत्ति	,,
तच्चरुइ	–	तत्त्वरुचि	,,
पओजण	–	प्रयोजन	,,
खोह	–	क्षोभ	,,
मण्णव	–	मण्डप	,,
जण्ण	–	यज्ञ	,,
पूइगंध	–	दुर्गंध	,,
सवणणक्खत्त	–	श्रवणनक्षत्र	,,
पडियार	–	प्रतिकार	,,
वामणबाम्हण	–	वामन ब्राह्मण	,,
देवविमाण	–	देव विमान	,,
किण्णरादिदेव	–	किन्नरादि देव	,,
सगमाउल	–	अपना मामा	कथा ८
आमरुक्ख	–	आम्र वृक्ष	,,
अहो	–	नीचे	,,
तवोकम्म	–	तपःकर्म	,,
धम्मसवण	–	धर्मश्रवण	,,
अज्झयण	–	अध्ययन	,,
परिपक्क	–	परिपक्व	,,

आदावणजोग	–	आतापनयोग	कथा ८
पई	–	पति	,,
सगभादर	–	अपना भाई	,,
णिग्घाडिद	–	निकलना	,,
सगित्थी	–	अपनी स्त्री	,,
माउल	–	मामा	,,
अक्खि	–	आँख	,,
बिद्ध	–	विधना	,,
भत्ता	–	भर्ता	,,
पडिवरिस	–	प्रतिवर्ष	,,
अट्ठण्हियपव्व	–	अष्टाकिह्निक पर्व	,,
तिवारं	–	तीन बार	,,
रहजत्ता	–	रथयात्रा	,,
भाद	–	भात	,,
पट्टराणी	–	पट्टरानी	,,
बोद्धसाहु	–	बौद्धसाधु	,,
जोव्वण	–	यौवन	,,
चेत्तमास	–	चैत्रमास	,,
हिंडोल	–	झूला	,,
फागुणमास	–	फाल्गुनमास	,,
णंदीसरपव्वदिण	–	नंदीश्वरपर्व के दिन	,,
भत्त	–	भक्त	कथा ९
सुणु	–	पुत्र	,,
मेस	–	भैंसा	,,
समायार	–	समाचार	,,
माली	–	माली	,,
संकप्प	–	संकल्प	,,
किण्हसप्प	–	कृष्ण सर्प	,,

सव्वोसहरिद्धि	–	सर्वौषधिऋद्धि	कथा ९
अफासिज्ज	–	अस्पर्श	,,
सिसुमारतडाग	–	शिशुमार तालाब	,,
तदाणि	–	उस समय	,,
जलदेवदा	–	जल देवता	,,
दुंदभिसद्द	–	दुंदभि शब्द	,,
साहुकार	–	साधुकार	,,
संकप्पिय	–	संकल्पित	कथा १०
वावार	–	व्यापार	,,
कुंडुबि	–	कुटुम्बी	,,
समाहाण	–	समाधान	,,
सपह	–	शपथ	,,
सग्गकण्णा	–	स्वर्ग कन्या	कथा ११
पइप्पिया	–	प्रतिप्रिया	,,
णिक्कीलिद	–	निष्कीलित	,,
कुरवंस	–	कुरुवंश	कथा १२
सेणावइ	–	सेनापति	,,
एक्कसियं	–	एक बार	,,
जिणालय	–	जिनालय	,,
सयंवर	–	स्वयंवर	,,
जुद्ध	–	युद्ध	,,
वियलिय	–	विचलित	,,
पसंसण	–	प्रशंसा	,,
वत्थाभूसण	–	वस्त्राभूषण	,,
कुडला	–	कुटिल	कथा १३
गोखुर	–	गोखुर	,,
सच्छंद	–	स्वच्छंदता	,,
गोधण	–	गोधन	,,

सावधाण	–	सावधान	कथा १३
आरोग्ग	–	आरोग्य	,,
अरण्ण	–	अरण्य	,,
कट्ठ	–	काष्ठ	,,
दुग्गदि	–	दुर्गति	,,
कडारि	–	कटारि	कथा १४
समया	–	पास	,,
जलयाण	–	जलयान	,,
अतिवीसास	–	अतिविश्वास	,,
धूदकीडा	–	द्यूतक्रीड़ा	,,
अंगुलीय	–	अँगूठी	,,
गोमय	–	गोबर	,,
कुविद	–	कुपित	,,
अगंधणजादि	–	अगंधनजाति	,,
भज्जा	–	भर्या	कथा १५
पंचग्गितव	–	पंचाग्नि तप	,,
लूडकज्ज	–	लूट कार्य	,,
कहाणय	–	कथानक	,,
तित्थजत्ता	–	तीर्थयात्रा	,,
सिलोग	–	श्लोक	,,
रत्तंध	–	रात्रि में अंधा	,,
कलत्त	–	स्त्री	कथा १६
सस्स	–	सासु	,,
रजिया	–	धोबिन	,,
गोवाल	–	गोपाल	कथा १७
णवणीद	–	नवनीत	,,
संथर	–	बिस्तर	,,
संवाहण	–	दबाना	,,

दुगूल	–	दुपट्टा	कथा १८
अट्ठाणिह	–	अष्टाह्निका	कथा १९
बंदीगिह	–	बंदीगृह	कथा १९
राणी	–	रानी	,,
एयस्स	–	एक दिन	,,
कच्चर	–	कचड़ा	,,
कुलाल	–	कुम्हार	कथा २१
णाई	–	नाई	,,
सूयर	–	सूकर	,,
वग्घ	–	वाघ	,,
सोहम्म	–	सौधर्म	,,
भेग	–	मेढक	कथा २२
समवसरण	–	समवशरण	,,
जक्ख	–	यक्ष	कथा २३
धत्ती	–	धाय	,,
सूवकार	–	रसोइया	,,
सव्वट्ठसिद्धि	–	सर्वार्थसिद्धि	,,
अट्टझाण	–	आर्तध्यान	,,
सराव	–	सकोरा	कथा २४
चम्मपत्त	–	चमड़े का पात्र	,,
वरत्त	–	रस्सी	,,
दब्भसूई	–	दर्भसूची	,,
दक्खिण	–	दक्षिण	,,
करीसग्गि	–	कंडे की अग्नि	,,

द्वितीय–खण्ड

चमक्कार	–	चमत्कार	कथा १
धम्मिग	–	धार्मिक	,,
अइकम्म	–	अतिक्रम	कथा ३
वदिकम्म	–	व्यतिक्रम	कथा ३
अइयार	–	अतिचार	,,
अणायार	–	अनाचार	,,
मुणिराय	–	मुनिराज	,,
वरिसाजोग	–	वर्षायोग	,,
णागरिय	–	नागरिक	,,
पुव्वण्ह	–	पूर्वाह्न	कथा ४
अवरण्ह	–	अपराह्न	,,
मज्झवेला	–	मध्याह्न वेला	,,
सवणणक्खत्त	–	श्रवणनक्षत्र	,,
पडिबोहिद	–	समझाया	,,
अभिक्खणाणोवओगो	–	अभीक्ष्णज्ञानोपयोग	,,
णिगोदपज्जय	–	निगोदपर्याय	कथा ५
कयाचि	–	कदाचित्	,,
बालुअसमुद्द	–	बालु का समुद्र	,,
कियण्णगुण	–	कृतज्ञतागुण	,,
सुमरण	–	स्मरण	,,
अच्चंत	–	अत्यन्त	,,
दिक्खिदा	–	दीक्षित	,,
सत्ती	–	शक्ति	कथा ६
चाग	–	त्याग	,,
खज्ज	–	खाद्य	,,
सज्ज	–	स्वाद्य	,,
लेह	–	लेय	,,
पेय	–	पेय	,,
पिच्छि	–	पिच्छी	,,
कमंडलु	–	कमण्डलु	,,
घरत्थ	–	गृहस्थ	,,

दिट्ठिवाद	–	दृष्टिवाद	कथा ६
महरिसि	–	महर्षि	,,
उक्कस्सभोगभूमि	–	उत्कृष्टभोगभूमि	,,
मज्झमभोगभूमि	–	मध्यमभोगभूमि	,,
जहण्णभोगभूमि	–	जघन्यभोगभूमि	,,
पुरोहिद	–	पुरोहित	,,
सेणावई	–	सेनापति	,,
सद्दूल	–	शार्दूल	,,
णउल	–	नकुल	,,
वाणर	–	वानर	,,
सूयर	–	शूकर	,,
तव	–	तप	कथा ७
अणसण	–	अनशन	,,
अवमोदर	–	अवमोदर्य	,,
वित्तिपरिसंखाण	–	वृत्तिपरसंख्यान	,,
रसपरिच्चाग	–	रसपरित्याग	,,
विवित्तसेज्जासयण	–	विविक्तशय्यासन	,,
कायकिलेस	–	कायक्लेश	,,
पायच्छित्त	–	प्रायश्चित्त	,,
विणअ	–	विनय	,,
वेज्जावच्च	–	वैयावृत्ति	,,
सज्झाअ	–	स्वाध्याय	,,
विउसग्ग	–	व्युत्सर्ग	,,
झाण	–	ध्यान	,,
दुद्ध	–	दूध	,,
दहि	–	दही	,,
घिद	–	घी	,,
तेल	–	तेल	,,
गुड	–	गुड़	कथा ७
लवण	–	नमक	,,
पल्लंकासण	–	पर्यँकासन	,,
आदावणादिजोग	–	आतापन आदि योग	,,
अणल	–	अग्नि	,,
वज्जघाद	–	वज्रघात	,,
भंडागार	–	भाण्डागार	कथा ८
वियडी	–	विकृति	,,
णिरवज्जविहिणा	–	निर्दोष विधि	कथा ९
सिक्ख	–	शैक्ष्य	,,
गिलाण	–	ग्लान	,,
मणुण्ण	–	मनोज्ञ	,,
पाढण	–	पढ़ाना	,,
पासुअ	–	प्रासुक	,,
वच्छल	–	वात्सल्य	,,
जस	–	यश	,,
अणुभूदि	–	अनुभूति	कथा १०
खओवसमसम्माइट्ठी	–	क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि	,,
खइयसम्मत्तस्स	–	क्षायिकसम्यग्दृष्टि	,,
मोक्खपह	–	मोक्षमार्ग	,,
पासाण	–	प्रासाद	,,
पडिम	–	प्रतिमा	,,
पाओवगमसण्णास	–	प्रायोपगमन संन्यास	,,
अच्चुदसग्ग	–	अच्युत स्वर्ग	,,
णिहत्ति	–	निधत्ति	,,
णिकाचिय	–	निकाचित	,,
सिरिधवलागंथ	–	श्रीधवला ग्रंथ	कथा ११
तिक्खुत्त	–	तीन बार	,,

जयउ सुय देवदा	-	श्रुतदेवता जयवंत हो	कथा ११
उड्डंतुरिया	-	दांत बाहर निकली	,,
काणि	-	कानी	,,
णक्खत्त	-	नक्षत्र	,,
एक्कारसी	-	एकादशी	,,
संख	-	शंख	,,
दव्वपमाणाणुगम	-	द्रव्यप्रमाणानुगम	,,
धवलाटीया	-	धवलाटीका	,,
महाधवलाटीका	-	महाधवलाटीका	,,
बहुसुदभत्ति	-	बहुश्रुतभक्ति	,,
णियमसार	-	नियमसार	,,
समयपाहुड	-	समयपाहुड़	,,
पंचत्थिकाअ	-	पंचास्तिकाय	,,
अट्ठपाहुड	-	अष्टपाहुड़	,,
भत्तिसंगह	-	भक्तिसंग्रह	,,
सव्वट्ठसिद्धी	-	सर्वार्थसिद्धि	,,
जिणिंदवायरण	-	जैनेन्द्रव्याकरण	,,
समाहितंत	-	समाधितंत्र	,,
इट्ठोवएस	-	इष्टोपदेश	,,
भारदी	-	भारती	कथा १३
सरस्सई	-	सरस्वती	,,
सुयदेवदा	-	श्रुतदेवता	,,
णाणदेवदा	-	ज्ञानदेवता	,,
धम्म	-	धर्म	,,
अधम्म	-	अधर्म	,,
आयास	-	आकाश	,,
काल	-	काल	,,
पढमाणुओग	-	प्रथमानुयोग	,,
करणाणुओग	-	करणानुयोग	कथा १३
चरणाणुओग	-	चरणानुयोग	,,
दव्वाणुओग	-	द्रव्यानुयोग	,,
विहजण	-	विभाजन	,,
णारायण	-	नारायण	,,
पडिणारायण	-	प्रतिनारायण	,,
बलदेव	-	बलदेव	,,
सलागापुरिस	-	शलाकापुरुष	,,
पडिकमण	-	प्रतिक्रमण	कथा १४
पच्चक्खाण	-	प्रत्याख्यान	,,
पुह-पुह	-	पृथक-पृथक	,,
थुदी	-	स्तुति	,,
पाढण	-	पढ़ाना	,,
लोइयववहार	-	लोकव्यवहार	,,
णेमित्तिय	-	निमित्तिक	
पहाव	-	प्रभाव	कथा १५
जिणतित्थ	-	जिनेन्द्र के तीर्थ	,,
पुणुरुद्धार	-	पुनः उद्धार	,,
णिम्मावण	-	नव तीर्थों का निर्माण	,,
धम्मसंसकिय	-	धर्मसंस्कृति	,,
सोरसेणजणवद	-	शोरसेन जनपद	,,
पाइयभासा	-	प्राकृतभाषा	,,
अणेयंतधम्मजुद	-	अनंकान्त धर्म युक्त	,,
सादवाद	-	स्याद्वाद	,,
साहम्मि	-	साधर्मी	कथा १६
विस्सकल्लाण	-	विश्वकल्याण	,,

❑ ❑ ❑

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ –

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ –

1. सत्कर्म पंजिका 2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश 5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन 7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार
9. पात्रकेसरी स्तोत्र 10. अद्याष्टक स्तोत्र
11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघात:
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार 14. समयसार 15. परीक्षामुख

पद्यानुवाद

1.पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र 4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र 6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक 8. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ

अंग्रजी भाषा में

1. Fact of Fate (articles)
2.Twelve Comtemplation 3. I Love my Soul

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ –

1. स्तुति पथ (इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं)

1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम् 5. कुन्दकुन्दाष्टकम् 6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम् 8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम् 10. मौनाष्टकम् 11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र 13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन

2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र।
5. अनासक्त योगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त)

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ –

1. तित्थयर भावणा
(सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका)
4. धम्मकहा 5. प्राकृत रचना भास्कर भाग १-२

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेन्ट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?
6. अन्तर्गूंज (भजन एवं हाइकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)
9. नई छहढाला 10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र)

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन